॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ अथर्ववेद संहिता ॥

॥ अथर्ववेद॥

॥ अथ अष्टम काण्डम्॥

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

सूक्त १- दीर्घायुप्राप्ति सूक्त 4
सूक्त २-दीर्घायुप्राप्ति सूक्त 14
सूक्त ३- शत्रुनाशन सूक्त 27
सूक्त ४- शत्रुदमन सूक्त 40
सूक्त ५- प्रतिसरमणि सूक्त 53
सूक्त ६- गर्भदोषनिवारण सूक्त 64
सूक्त ७- औषधि समहु सूक्त 77
सूक्त ८- शत्रुपराजय सूक्त 89
सूक्त ९- विराट् सूक्त 100
सूक्त १०- विराट् सूक्त 113

॥अथर्ववेद – अष्टम काण्डम्॥

सूक्त १- दीर्घायुप्राप्ति सूक्त

मृत्यु देव की स्तुति, पाप देवता के बंधनों से उद्धार, मृत्यु से छुटकारा पाकर अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने का आग्रह, तथा द्यौ देवता एवं पृथ्वी से बाहरी और आंतरिक रोगों के विनाश की कामना

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राना अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥८,१.१॥

मृत्यु के द्वारा सबको अन्त करने वाले अन्तकदेव को नमस्कार है । इन देव की कृपा से इस मनुष्य के शरीर में 'प्राण' एवं 'अपान' सुखपूर्वक संचरित हों । यह पुरुष दीर्घ जीवनयापन करता हुआ, सूर्य के इस भाग(पृथ्वी) में आनन्दपूर्वक रहे ॥८,१.१॥

उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तयह ॥८,१.२॥

'भग' देवता ने इस मनुष्य की जीवनी-शक्ति को उठाया, तेजस्वी सोमदेव ने इसे उठाया एवं इन्द्रदेव तथा अग्निदेव ने भी इसे ऊँचा उठाया ॥८,१.२॥

इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत्त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वचा भरामसि ॥८,१.३॥

(हे आयु की इच्छा करने वाले पुरुष !) इसी (शरीर) में तेरे प्राण, आयु, मन तथा जीवन स्थिर रहे जिन रोगरूपीं पाशों (बन्धनों) से तुम्हारी अधोगति हो रही थी, हम मंत्रों द्वारा उनसे तुम्हें मुक्त करते हैं ॥८,१.३॥

उत्क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीषमवमुञ्चमानः ।
मा छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥८,१.४॥

हे पुरुष ! तुम रोगरूप बन्धनों को काटकर मृत्यु के पाशजाल से मुक्त हो । अग्निदेव एवं सूर्यदेव के दर्शन करते हुए, इस पृथ्वी का त्याग न करो ॥८,१.४॥

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥८,१.५॥

हैं पुरुष ! अन्तरिक्ष में रहने वाली वायु तुम्हारे लिए सुखदायक हो, जल अमृत के समान हो, सूर्यदेव सुखदायक ताप प्रदान करें एवं मृत्युदेव की दया से दीर्घ जीवनयापन करो ॥८,१.५॥

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृनोमि ।
आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥८,१.६॥

हे पुरुष तुम्हारी ऊर्ध्वगति हो, अधोगति न हो मैं तुम्हें जीवनीशक्ति एवं बलवर्द्धक औषधियाँ देता हूँ, इससे तुम इस रथरूप शरीर पर आरूढ़ होकर, जरारहित रहते हुए, इस(जीवन की) विधा को बतलाना ॥८,१.६॥

मा ते मनस्तत्र गान् मा तिरो भून् मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥८,१.७॥

तुम्हारा मन मृत्यु की ओर न जाए और वहीं विलीन न हो जाए। तुम पितरों के पास न जाओ,वरन् जीने की इच्छा करो । समस्त देवता तुम्हारी रक्षा करें ॥८,१.७॥

मा गतानामा दीधीथा यह नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥८,१.८॥

जो { पित्तरगण) चले गए हैं, उनका ध्यान न करो। वह तुम्हें भी परलोक (पितरलोक) ले जा सकते हैं। हम तुम्हारा हाथ पकड़ते हैं। तुम इस अज्ञान अन्धकार से निकलकर ज्ञान के आलोक की ओर बढ़ो ॥८,१.८॥

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥८,१.९॥

हे मनुष्य !प्राणियों के प्राणों के हरण कर्ता यमदेवता के दो मार्गरक्षक कुत्ते श्वेत (दिन) और काले (रात) हैं । तुम इन कुत्तों का ग्रास न बनो, मेरी ओर ध्यान लगाओ एवं अपने मन को सांसारिकता से विमुखन करो ॥८,१.९॥

मैतं पन्थामनु गा भीम एष यहन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत्पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक्॥८,१.१०॥ {१}

तुम उस भयानक मार्ग का अनुसरण न करो, मृत्यु के पूर्व मन को उस मार्ग पर न ले जाओ । मैं जो कह रहा हूँ, उस पर ध्यान दो । तुम उस मार्ग पर न जाओ, वहाँ तुम्हारे लिए भय है, यहाँ तुम अभय हो ॥८,१.१०॥

रक्षन्तु त्वाग्नयो यह अप्स्वन्ता रक्षतु त्वा मनुष्या यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग्विद्युता सह ॥८,१.११॥

हे रक्षा की कामना करने वाले पुरुष ! आवाहन करने योग्य अग्निदेव , वैश्वानर अग्निदेव, विद्युत्रूष अग्निदेव एवं जल में निवास करने वाले अग्निदेव तुम्हारी रक्षा करें ॥८,१.११॥

मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात्संकसुकाच्चर रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु ।

पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च ।
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥८,१.१२॥

शारीरिक मांसपेशियों को आहार बनाने वाली क्रव्याद अग्नि तुम्हें आहार न माने । शव को भस्म करने वाले संकुसुक नामक अग्निदेव आपके निकट न आएँ । सूर्य, चन्द्रमा, द्यावा-पृथिवी एवं अन्तरिक्ष भी अपनी दिव्य शक्तियों से तुम्हारी रक्षा करें ॥८,१.१२॥

बोधश्च त्वा प्रतिबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥८,१.१३॥

हे रक्षाभिलाषी पुरुष ! बोध (विद्या, ज्ञान) तथा प्रतिबोध (अविद्या, अज्ञान) तुम्हारी रक्षा करें । 'गोपायन' एवं. 'जागृविष तुम्हारी रक्षा करें ॥८,१.१३॥

ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥८,१.१४॥

वह सब तुम्हारी रक्षा करें एवं पालन करें। उन समस्त दिव्य शक्तियों को नमस्कारपूर्वक यह उत्तम आहुति अर्पित है । वह इस समर्पण से प्रसन्न हों ॥८,१.१४॥

जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि ॥८,१.१५॥

रक्षक – पोषक सवितादेव एवं वायुदेव तथा इन्द्रदेव तुम्हारे प्राणों की रक्षा करें । तुम अपने पुत्र-पौत्रादि एवं भार्या के साथ रहो, इसलिए हम तुम्हें मृत्यु से ऊपर उठाते हैं। हम तुम्हारे प्राणों को तुम्हारे अनुकूल करते हैं, वह प्राण तथा बल तुम्हारा त्याग न करें ॥८,१.१५॥

मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन् मा जिह्वा बर्हिस्प्रमयुः कथा स्याः ।
उत्त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तयह ॥८,१.१६॥

जम्भ राक्षस तुम तक न पहुँचे, अज्ञानान्धकार तुम्हारे निकट न रहे । राक्षस की जीभ भी तुम तक न पहुँचे । तुम यज्ञ

करने वाले हो, इसलिए आदित्य, वसु, इन्द्र एवं अग्नि आदि देवता तुम्हारा कल्याणकारी उत्थान करें ॥८,१.१६॥

उत्त्वा द्यौरुत्पृथिव्युत्प्रजापतिरग्रभीत्।
उत्त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥८,१.१७॥

द्यावा-पृथिवी एवं प्रजापति तुम्हें मृत्यु से बचाएँ । सोम जिनके राजा हैं, ऐसी औषधियाँ मृत्यु से रक्षा करें ॥८,१.१७॥

अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः ।
इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत्पारयामसि ॥८,१.१८॥

है देवताओ ! यह पुरुष (हमारे उपचार के प्रभाव से) मृत्यु के मुख से बचा रहे । हम हजारों उपायों से इसकी रक्षा करते हैं ॥८,१.१८॥

उत्त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।
मा त्वा व्यस्तकेश्यो मा त्वाघरुदो रुदन् ॥८,१.१९॥

हे प्राण रक्षा की कामना करने वाले पुरुष ! हम मृत्यु से तुम्हें पार करते हैं। आयु के अधिष्ठाता देव तुम्हें न मरने दें । स्त्रियाँ बाल खोलकर तुम्हारे लिए विलाप न करें ॥८,१.१९॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥८,१.२०॥

हे पुरुष ! यह तुम्हारा पुनः नया जन्मसा हुआ है, क्योंकि हम तुम्हें मृत्यु के मुख से खींचकर लाए हैं। अब तुम्हारे समस्त अंग आदि पूर्ण स्वस्थ रहें एवं तुम्हें पूर्ण आयु प्राप्त हो ॥८,१.२०॥

व्यवात्ते ज्योतिरभूदप त्वत्तमो अक्रमीत्।
अप त्वन् मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥८,१.२१॥ {२}

हे पुरुष ! तुम्हारे पास जो अन्धकार था, उसे हटा दिया है एवं तुम्हें नई जीवन-ज्योति मिल गई है। पाप देवता निर्मत एवं मृत्यु को तुमसे दूर हटा दिया है। अब तुम्हारे क्षयकारी

रोग को हमने नष्ट कर दिया । तुम्हें दीर्घ आयु एवं नीरोगता प्राप्त हो ॥८,१.२१॥

॥अथर्ववेद – अष्टम काण्डम्॥

सूक्त २-दीर्घायुप्राप्ति सूक्त

आयु की कामना, निंदा से मक्ति, भव और शर्व की स्तुति, अग्नि से प्राणों की याचना तथा सविता देव की प्रशंसा

आ रभस्वेमाममृतस्य श्रुष्टिमछिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ॥८,२.१॥

हे रोगी !इस अमृत का पान प्रारम्भ करो तुम वृद्धावस्था तक निर्विघ्न जीवनयापन करो।हमने तुम्हारे प्राणों एवं आयु की रक्षा हेतु व्यवस्था बना दी हैं ।तुम भोगमय जीवन एवं अज्ञान से दूर रहो, अभी मृत्यु को प्राप्त न हो ॥८,२.१॥

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङ्ा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशान् अशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥८,२.२॥

हे पुरुष . ! तुम जीवित मनुष्य के समान सचेतन हो । हम तुम्हारे अपयश का नाश करते हुए तुम्हें मृत्यु-पाश (रोगों) से बचाते हैं। तुम्हें दीर्घ आयु प्राप्त हो ॥८,२.२॥

वातात्ते प्रानमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत्ते मनस्त्वयि तद्धारयामि सं वित्स्वाङ्गै·र्वद जिह्वयालपन् ॥८,२.३॥

हे पुरुष ! हमने वायुदेवता से तुम्हारे प्राणों को, सूर्य देवता से नेत्र-ज्योति को प्राप्त करके, तुम्हारे मन को तुम्हारे अन्दर धारण कराया है । अब तुम अपने समस्त अंग-अवयव प्राप्त कर लिए हो । अत: सचेष्ट होकर जिह्वा से स्पष्ट उच्चारण करो ॥८,२.३॥

प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ॥८,२.४॥

जिस प्रकार अभी उत्पन्न अग्नि को, प्राणी अपने प्राण वायु द्वारा प्रदीप्त करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे क्षीण-प्राणों को

अनेक उपायों द्वारा तेजस्वी बनाते हैं । हे मृत्यो ! तेरे प्राण-बल एवं क्रूर नेत्रों को हम नमस्कार करते हैं ॥८,२.४॥

अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि ।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥८,२.५॥

यह पुरुष अभी न मरे, बहुत समय तक जीवित रहे । औषधि प्रयोग द्वारा हम इसको सचेतन करते हैं। हे मृत्यो ! तुम इस पुरुष को न मारो ॥८,२.५॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातयह ॥८,२.६॥

सदैव हरी रहने वाली, जीवनदायनी, रक्षा करने वाली, रोग दूर करने वाली इस "पाठा" नामक औषधि का, इस पुरुष को मृत्यु से बचाने के लिए म आवाहन करते हैं अर्थात् प्रयोग करते हैं ॥८,२.६॥

अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहायाः इहास्तु ।

भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥८,२.७॥

हे मृत्यो ! यह पुरुष आपका ही है, ऐसा जानते हुए इसे मत मारो। यह इस पृथ्वी पर अपनी पूर्ण आयु तक सब प्रकार से सक्रिय रहे । हे भव और शर्व !आप इसके रोगों का नाश करके, इसे सुखमय दीर्घायुष्य प्रदान करें॥८,२.७॥

अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितोऽयमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥८,२.८॥

हे मृत्यो ! आप इस मनुष्य को समझाएँ, इस पर दया करें। यह पुरुष नेत्र-कान आदि अंगों से स्वस्थ रहे एवं सौ वर्ष तक सुखपूर्वक रहे । अन्य किसी की सेवा के आश्रय के बिना अपने कार्य स्वयं करने में समर्थ रहे ॥८,२.८॥

देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत्त्वा मृत्योरपीपरम् ।

आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥८,२.९॥

हे पुरुष ! दैविक आपत्तियों से तुम्हारी रक्षा हो। हम रजस् (भोगवृत्ति) से पार ले जाते हैं। मांसभक्षक (क्रव्याद) अग्नि को तुमसे दूर करते हैं एवं तुम्हारे दीर्घजीवन के लिए देव यजन-अग्नि की स्थापना करते हैं ॥८,२.९॥

यत्ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद्रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥८,२.१०॥ {३}

हे मृत्यो ! तेरे रजोमय मार्ग का कोई नाश नहीं कर सकता । इस पुरुष को इस मार्ग से बचे रहने का, मन्त्रणारूप कवच धारण कराते हैं ॥८,२.१०॥

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान् ॥८,२.११॥

हे जीवनाभिलाषी पुरुष ! हम तुम्हारे प्राण, अपान को सुव्यवस्थित कर दीर्घआयु प्रदान करते हैं । वृद्धावस्था एवं मृत्यु- यह सब तुम्हारा कल्याण करने वाले हों । विवस्वान् सूर्य से उत्पन्न-काल के दूतों से हम तुम्हें बचाते हैं ॥८,२.११॥

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवाप हन्मसि ॥८,२.१२॥

आतंकित करने वाले निर्ऋति की दुर्गति करते हैं, मारते हैं। मांस-भक्षी पिशाचों (क्षयकारक विषाणुओं) को नष्ट करते हैं, अन्य भी जो अहित करने वाले हैं, उन सब तमस् गुण वालों का हम नाश करते हैं ॥८,२.१२॥

अग्नेष्ट प्राननमृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत्ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥८,२.१३॥

हे पुरुष ! हम अमरता और आयु को धारण करने वाले जातवेदा अग्निदेव से तुम्हारे प्राणों को सतेज करने की

याचना करते हैं। हमारे द्वारा किए गए शान्तिकर्म तुम्हें समृद्धिशाली बनाएँ । उनके प्रभाव से तुम पीड़ारहित, अमर और सुखी जीवनयापन करो ॥८,२.१३॥

शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥८,२.१४॥

द्यावा-पृथिवी तुम्हें सन्ताप देने वाली न हों । वह तुम्हें धन-ऐश्वर्य देने वाली एवं कल्याण करने वाली हों। सूर्यदेव की कृपा से तुम्हें सुखद ताप मिले । हृदय को वायुदेवता सुख दें । द्युलोक में रहने वाला जल (सूक्ष्म रम एवं बहने वाला जल तुम्हें दिव्य सुख प्रदान करे ॥८,२.१४॥

शिवास्ते सन्त्वोषधय उत्त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥८,२.१५॥

औषधियाँ तुम्हारे लिए कल्याणकारी गुणों से युक्त हों । हम तुम्हें पृथ्वी के निचले भूभाग से उच्च भूभाग पर लाए हैं ।

यहाँ अदितिमाता के दोनों पुत्र सूर्यदेवता एवं चन्द्रमादेवता तुम्हारी रक्षा करें ॥८,२.१५॥

यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे तत्कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्षणमस्तु ते ॥८,२.१६॥

हे बालक ! तुम्हारी नाभि पर बँधने वाला अधोवस्त्र एवं ऊपर ओढ़ने वाला परिधान-वस्त्र तुम्हें सुख पहुँचाने वाला हो। वह खुरदुरा न होकर सुखद, स्पर्शकारक एवं सुकोमल हो ॥८,२.१६॥

यत्क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥८,२.१७॥

हे क्षौरकर्म करने वाले भद्र पुरुष !आप जिस छुरे के द्वारा सिर एवं मुख-मण्डल के बालों का मुण्डन करना चाहते हैं, वह स्वच्छ और तीक्ष्णधारयुक्त हो । क्षौरकर्म द्वारा मुख की शोभा बढ़ाओ, हमारी आयु क्षीण मत करो ॥८,२.१७॥

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।

एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥८,२.१८॥

हे अन्नप्राशन संस्कार से संस्कारित होने वाले बालक ! यह धान और जौ तुम्हारे लिए कल्याणकारी एवं बलवर्धक हों । यह दोनों रोगनाश करने वाले तुम्हें पापों से मुक्त करें ॥८,२.१८॥

यदश्नासि यत्पिबसि धान्यं कृष्याः पयः ।
यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ॥८,२.१९॥

हे बालक ! हम तुम्हारे लिए कृषि द्वारा उत्पन्न धान्य एवं दुग्धं, जो तुम खीर रूप में भी पीते हो, खाने में कष्ट देने वाले जिन पदार्थों को तुम खाते हो, उन सब को हम तुम्हारे लिए विषरहित करते हैं अर्थात् वह तुम्हें हानि न पहुँचाएँ ॥८,२.१९॥

अह्ने च त्वा रात्रयह चोभाभ्यां परि दद्मसि ।
अरायहभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ॥८,२.२०॥ {४}

हे कुमार ! हम तुम्हें दिन और रात्रि के अभिमानी देवताओं को सौंपते हैं । वह तुम्हारी, दिन के समय और रात्रि के समय धन के लुटेरों से एवं भक्षण- कामना वालों से रक्षा करें ॥८,२.२०॥

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥८,२.२१॥

हे बालक ! इन्द्र, अग्निसहित समस्त देवताओं की कृपा-अनुग्रह से तुम्हें सौ वर्ष की आयु प्राप्त हो ।इस सौ वर्ष की आयु के दोनों सन्धिकाल (किशोर व प्रौढ) सहित तीनों अवस्थाएँ (बाल्य, युवा व वृद्धावस्था) एवं चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास) में कोई व्यवधान न आए ।तुम्हारा सब प्रकार कल्याण हो ॥८,२.२१॥

शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि ।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि यहषु वर्धन्त ओषधीः ॥८,२.२२॥

हे बालक ! हम तुमको शरद् , हेमन्त, वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतुओं के लिए अर्पित करते हैं। यह सभी तुम्हारा कल्याण

करें। जिस ऋतु में औषधि बढ़ती है, वह वर्षा ऋतु भी तुम्हें सुख प्रदान करे ॥८,२.२२॥

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् ।
तस्मात्त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्धरामि स मा बिभेः ॥८,२.२३॥

मृत्यु दो पैर वालों की स्वामिनी हैं एवं चार पैर वालों की भी स्वामिनी है। हम तुम्हें अमर-आत्मज्ञान द्वारा मृत्यु से ऊपर उठाते हैं, जिससे तुम मृत्यु-भय से मुक्त हो जाओ ॥८,२.२३॥

सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः ।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्ति अधमं तमः ॥८,२.२४॥

तुम मृत्यु-भय से मुक्त हो जाओ। तुम नहीं मरोगे, नहीं मरोगे, क्योंकि तुम अधम-अज्ञानरूपी अन्धकार की ओर न जाकर ज्ञान के आलोक में (आत्म-ज्ञान में) निवास करते हो। तुम वहाँ नहीं मरोगे ॥८,२.२४॥

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।

यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥८,२.२५॥

जहाँ इस ज्ञान और विद्या के आधार पर जीवन को सुखमय बनाने के लिए चारों ओर कार्य किए जाते हैं। वहाँ गौ, घोड़ा एवं अन्य पशुओं सहित मनुष्य आदि सभी प्राणी दीर्घ जीवन पाते हैं ॥८,२.२५॥

परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात्सबन्धुभ्यः ।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥८,२.२६॥

इन श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा तुम्हारी रक्षा हो । अपने समान अन्य पुरुषों या समान बन्धुओं द्वारा तुम पर किए गए अभिचार कर्मो से तुम्हारी रक्षा हो । तुम अजर-अमर-दीर्घजीवन प्राप्त करो एवं तुम्हारे प्राण शरीर न छोड़े ॥८,२.२६॥

यह मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः ।
मुञ्चन्तु तस्मात्त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥८,२.२७॥

जो मृत्युकारक सैकड़ों मुख्य रोग हैं एवं जो नाशकारक ऐसी शक्तियाँ हैं कि जिनमें फँस जाने पर पार होना मुश्किल है, उन समस्त मृत्यु एवं नाशक शक्तियों से इन्द्र और अग्निदेव सहित समस्त देवता तुम्हारी रक्षा करें ॥८,२.२७॥

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा ।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥८,२.२८॥ {५}

हे पूतद् (पवित्रता देने वाली) औषधे ! आप अग्नि ऊर्जा के पार करने वाले शरीर हैं । आप राक्षसों और शत्रुओं का संहार करने वाले तथा रोगों को हटाने वाले हैं। ऐसे आप हमारी अभिलाषा को पूर्ण करें ॥८,२.२८॥

॥अथर्ववेद – अष्टम काण्डम्॥

सूक्त ३- शत्रुनाशन सूक्त

अग्नि देव की स्तुति

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥८,३.१॥

राक्षस-विध्वंसक, बलवान् , याजकों के मित्र और प्रतिष्ठित अग्निदेव को घृत से प्रज्वलित करते हुए हम अत्यन्त सुख का अनुभव करते हैं । यह अग्निदेव अपनी ज्वालाओं को तेज करते हुए यज्ञकर्म-सम्पादक यजमानों द्वारा प्रदीप्त होते हैं । हिंसक राक्षसों से यह अग्निदेव हमारी अहोरात्र रक्षा करें ॥८,३.१॥

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानान् उप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥८,३.२॥

हे ज्ञानस्वरूप अग्निदेव !आप अतितेजस्वी और लौहदन्त (बेधक सामर्थ्य वाले) होकर अपनी जिह्वा (ज्वालाओं) से हिंसक राक्षसों को नष्ट करें। मांसभक्षीं राक्षसों को काटकर अपने ज्वालामुखी मुख में धारण करें ॥८,३.२॥

उभोभयाविन्न् उप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान्
॥८,३.३॥

हे अग्निदेव ! आप अपने दोनों दाँतों (बेधक ज्वालाओं) को तीक्ष्ण करें, उन्हें असुरों में प्रविष्ट करा दें । दोनों प्रकार से आप उनका संहार करें तथा निकट एवं दूर की प्रजाओं की रक्षा करें । हे दीप्तिमान् बलशाली अग्निदेव !आप अन्तरिक्षस्थ असुरों के समीप जाएँ और उन दुष्ट-असुरों को अपनी दाढ़ों (शक्ति) से पीस डालें ॥८,३.३॥

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम्
॥८,३.४॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप असुरों की त्वचा को छिन्न-भिन्न कर डालें । इन्हें आपका हिंसक वज्रास्त्र अपनी तेजस्विता से नष्ट करे, असुरों के अङ्गों को भग्न करें । खण्ड-खण्ड़ पड़े असुरों के अंग-अवयवों को मांसभक्षी 'वृक' आदि हिंसक पशु भक्षण करें ॥८,३.४॥

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥८,३.५॥

हे ज्ञानवान् बलशाली अग्निदेव ! आप राक्षसों को स्थिर स्थिति में, इधर-उधर विचरण की स्थिति में, आकाश में अथवा मार्ग में जहाँ भी उन्हें देखें, वहीं शर-संधान करके – तेज बाण फेंककर, उनका संहार करें ॥८,३.५॥

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने इवाचा शल्यामशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदयह यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥८,३.६॥

हे अग्निदेव ! आप शक्तिवर्द्धक यज्ञों और हमारी प्रार्थना से संतुष्ट होकर अपने बाणों का संधान करते हुए, उनके अग्रभागों को वज्र से युक्त करते हुए, असुरों के हृदयों को भेद झालें । इसके पश्चात् युद्ध के लिए प्रेरित उनके सहयोगियों की भुजाओं को तोड़ डालें ॥८,३.६॥

उतारब्धान्त्स्पृनुहि जातवेद उतारेभाणामृष्टिभिर्यातुधानान् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः
॥८,३.७॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! आप आक्रान्ता असुर के हाथों से आक्रान्त यजमान व्यक्ति को प्रष्ट (दो धारों वाले खड्ग से सुरक्षित करें। आप प्रदीप्त होकर, कच्चे मांस का भक्षण करने वाले असुरों का संहार करें । शब्द करते हुए वेग से उड़ने वाले पक्षी इस राक्षस को खाएँ ॥८,३.७॥

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम्
॥८,३.८॥

हे युवा अग्निदेव ! कौन राक्षस इस यज्ञ के विध्वंसक हैं, यह हमें बताएँ ? समिधाओं द्वारा प्रज्वलित होकर आप उन असुरों का संहार करें । मनुष्यों के ऊपर आपकी कृपामयी दृष्टि रहती है, उसी कल्याणकारी दृष्टि के अन्तर्गत अपने तेज से असुरों का विनाश करें ॥८,३.८॥

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः
॥८,३.९॥

हे अग्निदेव ! आप अपने तीक्ष्ण तेज से हमारे यज्ञ का संरक्षण करें । हमें श्रेष्ठ ज्ञान-सम्पन्न बनाएँ। हे मनुष्यों के द्रष्टा अग्निदेव !आप असुरों के संहारक हैं ।आपके प्रज्वलित स्वरूप का दमन राक्षसगण न कर सकें॥
॥८,३.९॥

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च
॥८,३.१०॥

हे मनुष्य के निरीक्षक अग्निदेव ! आप मनुष्यों के घातक असुरों को भी देखें । उस राक्षस के आगे के तीन मस्तकों का उच्छेदन करें। उसके समीपस्थ राक्षसों को भी शीघ्रता से समाप्त करें। इस प्रकार तीनों ओर से राक्षस के मूल को काट डालें ॥८,३.१०॥

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्ग्धि
॥८,३.११॥

हे ज्ञानसम्पन्न अग्निदेव ! आपकी ज्वालाओं की चपेट में राक्षस तीन बार आएँ । जो राक्षस सत्य को असत्य वाणी से विनष्ट करते हैं, उन्हें अपनी तेजस्विता से भस्मीभूत कर डालें । स्तोता के समक्ष ही इन्हें विनष्ट कर दें ॥८,३.११॥

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदयह यातुधानान्
॥८,३.१२॥

हे अग्निदेव ! आज जो जोड़े (स्त्री-पुरुष) आपसी झगड़ा करते हैं तथा जो व्यक्ति परस्पर कटु-वाणी का प्रयोग करते हैं, मन्युयुक्त मनः शक्ति से छोड़े गए बाणों के द्वारा (सूक्ष्म प्रहार द्वारा आप उन राक्षसों (झगड़े एवं कटु वाणी के प्रेरक) के हृदय को वेध डालें ॥८,३.१२॥

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवान् छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि
॥८,३.१३॥

हे अग्निदेव ! आप असुरों को अपनी तेजस्विता से भस्म करें, उन्हें अपनी तप:शक्ति से विनष्ट करें । हिंसक असुरों को अपनी तीक्ष्ण ज्वाला से विनष्ट करें । मनुष्यों के प्राणों का हरण करने वाले असुरों को अपनी ज्वालाओं से भस्मीभूत कर दें ॥८,३.१३॥

पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋछन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः
॥८,३.१४॥

अग्नि आदि देवगण, प्राणघाती असुरों का संहार करें, उनके समीप हमारे शापयुक्त वचन जाएँ ।असत्यवादी असुरों के मर्मस्थल के पास बाण जाएँ । सर्वव्यापक अग्निदेव के बन्धन में असुरों का पतन हो ॥८,३.१४॥

यः पौरुषेयहण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥८,३.१५॥

हे अग्निदेव ! जो राक्षस मनुष्य के मांस से (मनुष्य को मारकर) स्वयं को संतुष्ट करते हैं, जो अश्वादि पशुओं से मांस को एकत्र करते हैं तथा जो हिंसारहित गौ के दूध को चुराते हैं, ऐसे दुष्टों के मस्तकों को आप अपनी सामर्थ्य से छिन्न-भिन्न कर डालें ॥८,३.१५॥

विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितयह दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥८,३.१६॥

राक्षसी शक्तियाँ गौओं के जिस दूध का पान करें, वह उनके निमित्त विष के समान हो जाए । देवमाता अदिति की संतुष्टि के लिए इन राक्षसों को आप अपने ज्वालारूपी शस्त्रों से काट डालें । सवितादेव इन राक्षसों को, हिंसक पशुओं को प्रदान करें। औषधियों के सेवन योग्य अंश इन्हें प्राप्त न हों ॥८,३.१६॥

संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि
॥८,३.१७॥

हे मनुष्यों के निरीक्षक अग्निदेव ! वर्ष भर में संगृहीत होने वाले गाय के दूध को दुष्ट राक्षस पान न करने पाएँ । जो राक्षस इस अमृतवत् दूध को पीने की अभिलाषा करते हैं, आपके समक्ष आने पर आप इन्हें ज्वालारूपी तेजस् से छिन्न-भिन्न करें ॥८,३.१७॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरान् अनु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः
॥८,३.१८॥

हे ज्ञानवान्, बलशाली अग्निदेव ! आपने सदा से राक्षसों का दलन किया है, उन्हें युद्ध में पराभूत किया है । आप क्रूर प्रकृति वाले, अभक्ष्य आहार करने वाले दुष्टों को नष्ट करें।वे आपकी तेजस्विता से बच न सकें ॥८,३.१८॥

त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात्।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥८,३.१९॥

हे अग्निदेव ! आप हमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर से संरक्षित करें। आपकी अति उज्ज्वल, अविनाशी और अति तापयुक्त ज्वालाएँ दुष्कर्मी राक्षसों को शीघ्र भस्म करें ॥८,३.१९॥

पश्चात्पुरस्तादधरादुतोत्तरात्कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्ने अग्ने मर्तामममर्त्यस्त्वं नः ॥८,३.२०॥

हे दीप्तिमान् अग्निदेव ! आप कवि (क्रान्तदर्शी) हैं, अपने कौशल से उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से हमारी भली प्रकार रक्षा करें । हे मित्र और अग्निदेव ! आप जीर्णतारहित हैं, हम आपके मित्र आपकी कृपा दृष्टि से दीर्घजीवी हों। आप अविनाशी हैं, हम मरणधर्मा मनुष्यों को चिरंजीवी बनाएँ ॥८,३.२०॥

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो यहन पश्यसि यातुधानान् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥८,३.२१॥

हे ज्ञानसम्पन्न, बलशाली अग्निदेव ! गर्जना करने वाले अहंकारी असुरों पर वही दृष्टि रखें, जिससे आप अषयों के उत्पीड़क नाखूनों या खुरों वाले असुरों को देखते हैं। सत्य को असत्य से विनष्ट करने वाले अज्ञानी असुर को आप अपनी दिव्य तेजस्विता से अथर्वा ऋषि के सम्मान में भस्मीभूत कर डालें ॥८,३.२१॥

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥८,३.२२॥

हे शक्तिशाली अग्निदेव ! आप पूर्णता प्रदान करने वाले विज्ञ, संघर्षशील असुरों का नित्यप्रति संहार करने वाले हैं। हम आपका ध्यान करते हैं ॥८,३.२२॥

विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥८,३.२३॥

हे अग्निदेव ! आप विध्वंसक कर्मों में संलग्न राक्षसों को अपनी विस्तृत, तीक्ष्ण तेजस्विता से जलाएँ तथा तपते हुए अष्ट (दुधारे) अस्त्रों से भी उन्हें नष्ट करें ॥८,३.२३॥

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्षे ॥८,३.२४॥

अपनी अत्यन्त तेजस्वी ज्वालाओं के साथ अग्निदेव प्रकाशित होकर स्व-सामर्थ्य से सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों को प्रकाशित करते हैं। असुरता द्वारा फैलायह गए कपटपूर्ण छल-छद्मों के संहार में सक्षम होने के कारण

अग्निदेव उनके संहार हेतु अपने ज्वालारूपी सींगों को तीक्ष्ण करते हैं ॥८,३.२४॥

यह ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते ।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनम् ।
प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व ॥८,३.२५॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेवे ! आपके प्रख्यात ज्वालारूपी सींग जीर्णतारहित और तीक्ष्ण होने से हथियाररूप हैं। हमारे द्वारा प्रयुक्त मन्त्र-सामर्थ्य से तीक्ष्णतायुक्त सींगों से दुष्ट प्रकृति के राक्षसों को सभी ओर से विनाश करें।यह क्या हो रहा है?" ऐसा कहते हुए छिद्रान्वेषी राक्षसों का पूर्ण संहार करें ॥८,३.२५॥

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः ।
शुचिः पावक ईड्यः ॥८,३.२६॥

धवल, आभायुक्त, अमर, पावन और शुद्ध करने वाले अग्निदेव असुरों का नाश करते हैं, वह देव स्तुति करने योग्य हैं ॥८,३.२६॥

॥अथर्ववेद – अष्टम काण्डम्॥

सूक्त ४- शत्रुदमन सूक्त

इंद्र और सोम की स्तुति , सोम देव द्वारा पापी राक्षस का वध तथा मरुतों की प्रशंसा

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः
॥८,४.१॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! आप राक्षसों को जलाकर मारें । हे अभीष्टवर्धक ! आप अज्ञान-रूपी अंधकार में विकसित हुए राक्षसों का विनाश करें । ज्ञानहीन राक्षसों को तप्त करके, मारकर फेंक दें, हमसे दूर कर दें । दूसरोंका भक्षण करने वालों को जर्जरित करें ॥८,४.१॥

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्यस्तु चरुरग्निमामिव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने
॥८,४.२॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! आप महापापी, प्रसिद्ध दुष्टों को नष्ट करें । वह आपके तेज से आग में डाले गए चरु के समान जलकर विनष्ट हो जाएँ। ज्ञान से द्वेष रखने वाले, कच्चा मांस भक्षण करने वाले, भयानक रूपधारी, सर्वभक्षी (दुष्टों) के लिए निरन्तर द्वेष (वैर) भाव रखें ॥८,४.२॥

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥८,४.३॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! दुष्कर्मा राक्षसों को गहन अन्धकार में दबा दें, जिससे वह पुनः निकल न सकें । आप दोनों का शत्रु-मंजक बल, शत्रुओं को जीतने में समर्थ हो ॥८,४.३॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत्तक्षतं स्वर्यं१ पर्वतेभ्यो यहन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥८,४.४॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! आप अन्तरिक्ष से मारक हथियार उत्पन्न करें । राक्षसों के विनाश के लिए पृथ्वी से आयुध प्रकट करें । मेघ से राक्षसों का विध्वंसक वज्र उत्पन्न करके, बढ़ने वाले राक्षसों को मारें ॥८,४.४॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥८,४.५॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! आप अन्तरिक्ष से चारों ओर आयुध फेंकें। आप दोनों अग्नि की तरह तप्त करने वाले, पत्थरों जैसे मारक, तापक प्रहार वाले, अजर आयुधों से लूट-लूटकर खाने वाले राक्षसों को फाड़ू डालें, जिससे वह चुप-चाप पलायन कर जाएँ ॥८,४.५॥

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयहमा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ॥८,४.६॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! रस्सी जिस प्रकार से बगल में होकर घोड़े को चारों तरफ से बाँधती हैं, उसी तरह यह स्तुति आपको परिव्याप्त करे । आप बली है, अपनी मेधाशक्ति के बल से यह प्रार्थना हम आपके पास प्रेषित करते हैं। राजाओं की भाँति आप इन स्तुतियों को फलीभूत करें ॥८,४.६॥

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः
॥८,४.७॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! आप शीघ्रगामी अश्वों शत्रुओं पर आक्रमण करें, द्रोह करने वाले, विनाशकारी राक्षसों का विनाश करें । उस दुष्कर्मी को अपने कुकृत्य करने की) सुगमता न मिले, जो कभी भी हमें कष्ट देना चाहें ॥८,४.७॥

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना सम्गृभीता असन्न् अस्त्वसतः इन्द्र वक्ता
॥८,४.८॥

पवित्र मन से आचरण करने वाले मुझको, जो राक्षस असत्य वचनों द्वारा दोषी सिद्ध करता है, हे इन्द्रदेव ! वह असत्य भाषी (राक्षसी मुट्ठी में बँधे हुए जल के सदृश पूर्णरूपेण नष्ट हो जाए ॥८,४.८॥

यह पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहयह वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे
॥८,४.९॥

जो मुझ (वसिष्ठ) विशुद्ध मन से रहने वाले को, अपने स्वार्थ के लिए कष्ट देते हैं या अपने धन-साधनों से मुझ जैसे कल्याणवृत्ति वाले को दोषपूर्ण बनाते हैं, हे सोम ! आप उन्हें सर्प (विषैले जीव) के ऊपर फेंक दें॥८,४.९॥

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।
शत्रु स्तेन स्तेयकृद्द्वभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा तना च
॥८,४.१०॥

हे अग्निदेव ! जो हमारे अन्न के सार तत्त्व को नष्ट करने की इच्छा करता है, जो गौओं, अश्वों और सन्ततियों का विनाश करता है, वह चोर- समाज का शत्रु विनष्ट हो । वह अपने शरीर और संततियों के साथ समाप्त हो जाए॥८,४.१०॥

परः सो अस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम्
॥८,४.११॥

वह दुष्ट-पातकी शरीर और सन्तानों के साथ विनष्ट हो ।पृथ्वी आदि तीनों लोकों से उसका पतन हो जाए। हे देवो उसकी कीर्ति शुष्क होकर विनष्ट हो जाए जो दुष्टराक्षस हमें दिन-रात सताता है, उसका विनाश हो जाए॥८,४.११॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तस्योर्यत्सत्यं यतरद्दजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यसत्॥८,४.१२॥

विद्वान् मनुष्य यह जानता है कि सत्य और असत्य वचन परस्पर स्पर्धा करते हैं । उसमें जो सत्य और सरल होता

है, सोमदेव उसकी सुरक्षा करते हैं तथा जो असत् होता है, उसका हनन करते हैं ॥८,४.१२॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् । हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥८,४.१३॥

सोमदेवता पाप करने वाले, मिथ्याचारी और बलवान् को भी मारते हैं। वह राक्षसों का हनन करते और असत्य बोलने वाले को भी मारते हैं। वह (राक्षस) मारे जाकर इन्द्रदेव के द्वारा बाँधे जाते हैं ॥८,४.१३॥

यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवामप्यूहे अग्ने । किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥८,४.१४॥

यदि हम (भूलवश अनृतदेव के उपासक हैं, (अथवा) यदि हम बेकार में ही देवताओं के पास जाते हैं, तो भी हे अग्निदेव ! आप हम पर क्रोध न करें। द्रोहीं, मिथ्याभाषी ही आपके द्वारा हिंसित हो ॥८,४.१४॥

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पुरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥८,४.१५॥

यदि हम वसिष्ठ) राक्षस हैं, यदि हम किसी सज्जन पुरुष को हिंसित करें, तो आज ही मर जाएँ, (अन्यथा) हमें जो व्यर्थ ही राक्षस कहकर सम्बोधित करते हैं, वह अपने दस वीरों (परिजनों या इन्द्रियों) के सहित नष्ट हो जाएँ॥८,४.१५॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शिचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥८,४.१६॥

. जो राक्षस मुझ दैवी स्वभाव वाले (वसिष्ठ) को राक्षस कहता है तथा जो राक्षस अपने को "शुद्ध" कहता है, उसे इन्द्रदेव महान् आयुधों से नष्ट करें । वह सभी से पतित होकर गिरे ॥८,४.१६॥

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं१ गूहमाना ।
वव्रमनन्तमव सा पदीष्टिअ ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः
॥८,४.१७॥

जो राक्षसी निशाकाल में अपने शरीर को उल्लू की तरह छिपाकर चलती है, वह अधोमुखी होकर अनन्तगर्त में गिरे। पाषाण-खण्ड घोर शब्द करते हुए उन राक्षसों को विनष्ट करें ॥८,४.१७॥

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन् ।
वयो यह भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे
॥८,४.१८॥

हे मरुद् वीरो ! आप प्रजाओं के बीच रहकर राक्षसों को ढूंढने की इच्छा करें । जो राक्षस रात्रि समय में पक्षी बनकर आते हैं, जो यज्ञ में हिंसा करते हैं, उन्हें पकड़कर विनष्ट करें ॥८,४.१८॥

प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।

प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तोऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥८,४.१९॥

हे इन्द्रदेव ! आप अन्तरिक्ष मार्ग से वज्र प्रहार करें ।हे धनवान् इन्द्रदेव !आप अपने यजमान को सोम द्वारा संस्कारित करें ।आप पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण चारों ओर से पर्ववान् शस्त्र (वज्र) द्वारा राक्षसों का विनाश करें ॥८,४.१९॥

एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम्। शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नुनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥८,४.२०॥

जो राक्षस कुत्तों की तरह काटने दौड़ते हैं, जो राक्षस अहिंसनीय इन्द्रदेव की हिंसा करना चाहते हैं, इन्द्रदेव कपट्टियों को मारने के लिए वज्र को तेज करते हैं । इन्द्रदेव दुष्ट राक्षसों का वज्र से शीघ्र विनाश करें ॥८,४.२०॥

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम् ।

अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ॥८,४.२१॥

इन्द्रदेव राक्षसों का दमन करने वाले हैं। हविष्य के विनाशकों का इन्द्रदेव पराभव करते हैं । परशु जैसे वन काटता है, मुग्दर जैसे मिट्टी के बर्तन तोड़ता है, उसी तरह इन्द्रदेव सामने आयह हुए राक्षसों का संहार करते हैं॥ ॥८,४.२१॥

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥८,४.२२॥

हे इन्द्रदेव ! आप उल्लू के समान (मोहवाले) को मारें । भेड़ियह के समान (हिंसक), कुत्ते की भाँति (मत्सरग्रस्त) चक्रवाक पक्षी की तरह (कामी), बाज-गृध की तरह (मांस भक्षी) राक्षसों को प्रस्तर (वज्र) से मारें तथाइन सबसे हमारी रक्षा करें ॥८,४.२२॥

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावदपोछन्तु मिथुना यह किमीदिनः ।

पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥८,४.२३॥

राक्षस हमारे लिए घातक न हों, कष्ट देने वाले स्त्री-पुरुष के युग्मों से (देवगण) हमें बचाएँ । आपस में विघटन कराने वाले घातक राक्षसों से भी हमें बचाएँ । पृथ्वी हमें भूलोक के पापों से बचाए, अन्तरिक्ष हमें आकाश के पापों से बचाए ॥८,४.२३॥

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥८,४.२४॥

इन्द्रदेव पुरुष राक्षस को विनष्ट करें और कपटी हिंसक स्त्री का भी विनाश करें। हिंसा करना जिनका खेल है, उन्हें छिन्नमस्तक करें । वह सूर्योदय से पहले ही समाप्त हो जाएँ ॥८,४.२४॥

प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥८,४.२५॥

हे सोमदेव ! आप और इन्द्रदेव जाग्रत् रहकर सभी राक्षसों को देखते हैं। राक्षसों को मारने वाले अस्त्र उन पर फेंकें और कष्ट देने वालों का वज्र से संहार करें ॥८,४.२५॥

॥अथर्ववेद – अष्टम काण्डम्॥

सूक्त ५- प्रतिसरमणि सूक्त

तिलक वृक्ष से निर्मित मणि का वर्णन, तिलक वृक्ष की स्तुति तथा मणि की महिमा

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ॥८,५.१॥

यह विद्या अथवा मणि दुष्कृत्य करने वाले (शत्रु का प्रतिकार करने वाली है । वीरोचित गुण से सम्पन्न यह औषधि पराक्रमी पुरुष के ही बाँधी जाती है । वीर्ययुक्त यह मणि शत्रुओं की घातक, वीरों में वीरता लाने वाली, सभी प्रकार के रोगों की संरक्षक और सुन्दर तथा मंगलप्रद है ॥८,५.१॥

अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
प्रत्यक्कृत्या दूषयन्न् एति वीरः ॥८,५.२॥

यह मणि शत्रुनाशक, वीरतायुक्त, सहनशील, बलवती, अन्नप्रदाता, शत्रुओं को पराजित करने वाली तथा प्रचण्ड पराक्रमी है । यह प्रयोग कर्ता के दुष्कृत्य को पुन: उसी ओर प्रेरित करती हुई आ रही है ॥८,५.२॥

अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्न् अनेनासुरान् पराभावयन् मनीषी।
अनेनाजयद्द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत्प्रदिशश्चतस्रः ॥८,५.३॥

इस 'प्रतिसर' मणि की सामर्थ्य से इन्द्रदेव ने वृत्रासुर का संहार किया। इस मणि की ज्ञान-क्षमता के प्रभाव से मनीषी इन्द्रदेव ने असुरों को पराजित किया तथा द्युलोक और पृथ्वी पर स्वामित्व ग्रहण करने के साथ चतुर्दिक विजय पताका भी फहराई ॥८,५.३॥

अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥८,५.४॥

यह 'स्राक्त्य' (प्रगतिशील) मणि (दुष्प्रयोगों को) उलट देने तथा प्रतिकार करने की क्षमता से युक्त है । यह ओजस्वी है, आक्रामक है तथा वशीकरण की सामर्थ्य से युक्त है। यह मणि हमें सभी प्रकार से संरक्षण प्रदान करे ॥८,५.४॥

तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥८,५.५॥

इस मणि के प्रभाव के सम्बन्ध में अग्निदेव, सोमदेव, बृहस्पतिदेव, सर्वप्रेरक सवितादेव तथा इन्द्रादि देवों ने भी कहा है । यह सभी अग्रगामी देवगण हमारे निमित्त भेजी गई कृत्या को अभिचारकर्ता के पास ही अपने प्रभाव से वापस लौटा दें ॥८,५.५॥

अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥८,५.६॥

हम अपने और पाप देवी के बीच द्यावा-पृथिवी, दिन तथा सूर्यदेव को अवरोधक के रूप में स्थापित करते हैं। अभीष्ट फल साधक, सामने प्रतिष्ठित किए गए, यह देव प्रतिसर मंत्रों की सामर्थ्य से घातक प्रयोग को प्रयोक्ताकी ओर ही पुन: भेज दें ॥८,५.६॥

यह स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते ।
सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥८,५.७॥

इस स्राक्त्य (प्रगतिशील) मणि को जो मनुष्य रक्षा कवच के रूप में धारण करते हैं, वह सूर्य की तरह घुलोक में आरोहण करके कृत्या (अभिचारों) को बाधित कर लेते हैं- वश में कर लेते हैं ॥८,५.७॥

स्राक्त्येन मणिना ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥८,५.८॥

अतीन्द्रिय ज्ञानसम्पन्न महामनीषी अथर्वा के समान, इस स्राक्त्यमणि की सामर्थ्य से हम सम्पूर्ण शत्रु सेनाओं को

जीत पाने में समर्थ हुए हैं और घातक राक्षसों को इसके द्वारा विनष्ट कर रहे हैं ॥८,५.८॥

याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः ।
कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः ।
उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या अति ॥८,५.९॥

आंगिरसी घातक प्रयोग, असुरों द्वारा अपनायह गए घातक प्रयोग, स्वयं द्वारा किए गए घातक प्रयोग, अपने लिए संहारक सिद्ध होने वाले तथा अन्य शत्रुओं द्वारा किए गए घातक प्रयोग, यह दोनों प्रकार के प्रयोग नब्बे नदियोंसे दूर (अर्थात् अत्यन्त दूर चले जाएँ ॥८,५.९॥

अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड्वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥८,५.१०॥

इस घातक प्रयोग के निवारक फल के आकांक्षी यजमान के निमित्त इन्द्र, विष्णु, सविता, रुद्र, अग्नि, प्रजापति, परमेष्ठी, विराट् और वैश्वानर, यह सभी देवगण तथा समस्त

ऋषिगण दूसरों के द्वारा प्रेषित घातक प्रयोग के निवारणार्थ मणिरूप कवच को बाँधे ॥८,५.१०॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥८,५.११॥

हे मणि के उत्पादक औषधे ! जिस प्रकार वन्यपशुओं में बाघ और भारवाहक पशुओं में बैल उत्तम है, उसी प्रकार आप औषधियों में श्रेष्ठ हैं । हम जिस (शत्रु या विकार) के बारे में इच्छा करें, उसे नष्ट हुआ हीं पाएँ ॥८,५.११॥

स इद्व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा ।
अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥८,५.१२॥

जो इस स्राक्त्य महिमायुक्त मणि को धारण करते हैं, वह निश्चित रूप से बाघ और शेर के समान दूसरों का पराभव करने वाले तथा गौओं में स्वच्छन्द विचरने वाले वृषभ के समान शत्रुओं को दबाने में सक्षम होते हैं ॥८,५.१२॥

नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥८,५.१३॥

इस स्राक्त्य मणि के धारण-कर्ताओं पर न तो अप्सराएँ, न गन्धर्व और न ही कोई अन्य मनुष्य प्रहार करने में सक्षम हैं, वह सभी दिशाओं में विशिष्टतापूर्वक शोभायमान होते हैं ॥८,५.१३॥

कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत्।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत्संश्रेषिणेऽजयत्।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥८,५.१४॥

(हे मणे !} प्रजापति कश्यप ने आपको बनाया और प्रेरित किया । देवराज इन्द्रदेव ने मानवी संग्राम में आपको धारण किया और विजय पाई । असीम सामर्थ्ययुक्त स्राक्त्य मणि को ही पहले देवों ने कवचरूप में प्रयुक्त किया ॥८,५.१४॥

यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक्त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥८,५.१५॥

जो पुरुष आपको मारक प्रयोगों, दीक्षाजनित घातक कृत्यों तथा घातक यज्ञों से मारने के इच्छुक हैं, हे इन्द्रदेव ! आप उन्हें सैकड़ों पर्वो से युक्त वज्रास्त्र से अपने सम्मुख मार डालें ॥८,५.१५॥

अयमिद्वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥८,५.१६॥

यह मणि घातक प्रयोग के निवारण में सुनिश्चित रूप से सहायिका, परम बलप्रदा, विजयात्मक गुणों से युक्त हैं । यह हमारी सन्तान और वैभव का संरक्षण करे । यह मणि हमारे लिए सभी ओर से संरक्षक रूप और उत्तम मंगलकारी कृत्यों की साधनभूत है ॥८,५.१६॥

असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात्।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥८,५.१७॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! हमारे उत्तर, दक्षिण और पश्चिम दिशा की ओर शत्रुओं की संहारक ज्योति विद्यमान रहे तथा

हमारे समक्ष अर्थात् पूर्व दिशा की ओर भी आप इस ज्योति को स्थापित करें ॥८,५.१७॥

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥८,५.१८॥

द्यावापृथिवी, सूर्य, इन्द्र, अग्नि और धाता, यह देवगण हमारे संरक्षण कवच को धारण करने में सहायक हों ॥८,५.१८॥

ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नातिविध्यन्ति सर्वे ।
तन् मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि ॥८,५.१९॥

इन्द्राग्नि देवों का जो विस्तृत और प्रचण्ड मणिरूप कवच है, जिसे भेदने में कोई देव समर्थ नहीं। वहीं कवच हमारे शरीर का सभी ओर से संरक्षण करे ।जिससे हम दीर्घायु के लाभ से युक्त और वृद्धावस्था तक स्वस्थ रहें ॥८,५.१९॥

आ मारुक्षद्देवमणिर्मह्या अरिष्टतातयह ।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥८,५.२०॥

इन्द्राग्नि देवों द्वारा धारण करने के लिए प्रेरित की गई यह देवमणि (हमारे अंगों पर) आरूढ़ हो । हे मनुष्यो ! आप शत्रुनाशक, शरीर रक्षक और तीन आवरणों से युक्त इस मणि को बल-सामर्थ्य के लिए धारण करें ॥८,५.२०॥

अस्मिन्न् इन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम्।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान्
जरदष्टिर्यथासत्॥८,५.२१॥

इन्द्रदेव इस स्राक्त्य मणि में हमारे अभिलषित सुखों को प्रतिष्ठित करें । हे देवगण ! आप इस मणि में संव्याप्त हों । इसकी कल्याण-क्षमता को ऐसा बढ़ाएँ, जिसके प्रभाव से धारणकर्ता सौ वर्ष की आयु पाने वालेऔर बुढ़ापे तक आरोग्य लाभ से लाभान्वित रहें ॥८,५.२१॥

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवामपराजितः ।
सोमपा अभयङ्करो वृषा । ॥८,५.२२॥

कल्याणकारी, प्रजाओं के पालक, वृत्रासुर के नाशक, विभिन्न युद्धों के संचालक सभी शत्रुओं के नियन्त्रणकर्ता, विजयी, अपराजेय, सोमपान कर्ता, भयरहित और अभीष्ट फल वर्षक इन्द्रदेव आपके शरीर पर मणि को बाँधे ।वह (मणि) सभी ओर से रात- दिन संरक्षण करे ॥८,५.२२॥

॥अथर्ववेद – अष्टम काण्डम्॥

सूक्त ६- गर्भदोषनिवारण सूक्त

दुर्नाम और सुनाम नामक रोगों और उनके निवारण का वर्णन, पीली सरसों रूपी औषधि, ककुंभ पिशाचों का नाश तथा गर्भ की रक्षा

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ ।
दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः ॥८,६.१॥

तुम्हारी माता ने तुम्हारे उत्पन्न होते ही पति को सौंपे जाने वाले जिन अंगों को स्वच्छ किया था, उनमें 'दुर्गामा' (दुष्ट नाम वाले), 'आलिंश' (शक्ति क्षय करने वाले) तथा 'वत्सप' (बच्चे को हानि पहुँचाने वाल) न पहुँचें ॥८,६.१॥

पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम् ।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥८,६.२॥

(गर्भिणी पीड़क) "पलाल" (अति सूक्ष्म रूप) और अनुपलाल (मांस से सम्बन्धित) रोगों को हम दूर करते है। (शरशर शब्दायमान), 'श', कोक (कामुक), मलिम्लुच (अति मलिनरूपयुक्त), पलीक (झुर्रियाँ पैदा करने वाले), आश्रेष्ठ (चिपककर पीड़ित करने वाले), वत्रिवास (रूप हीन करने वाले), अक्ष ग्रीवा (रीछ के समान गर्दन बनाने वाले), प्रमीलिन(आँखों में आलस्य पैदा करने वाले)-इन सभी गर्भनाशक राक्षसों को हम दूर हटाते हैं ॥८,६.२॥

मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा ।
कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥८,६.३॥

(हे रोगों के कारण !) तुम इस गर्भिणी के जंघाओं के बीच तथा अन्दर की ओर प्रवेश न करो तथा न नीचे सरको । हम इसके लिए 'दुर्नाम' नामक रोग की निवारक 'पिंगज़' औषधि को प्रयुक्त कर रहे हैं ॥८,६.३॥

दुर्णामा च सुनामा चोभा सम्वृतमिछतः ।
अरायान् अप हन्मः सुनामा स्तैणमिछताम् ॥८,६.४॥

दुर्नाम और सुनाम यह दोनों एक साथ रहने के इच्छुक हैं। इनमें निकृष्ट दुर्नाम को हम विनष्ट करते हैं तथा सुनाम स्त्रीजाति में विद्यमान रहे ॥८,६.४॥

यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः ।
अरायान् अस्या मुष्काभ्यां भंससोऽप हन्मसि ॥८,६.५॥

ज्ञों काले रंग का केशी नामक राक्षस रोग, स्तम्ब भाग में 'स्तम्बज' नामक रोग और खराब मुखवाले 'तुण्डिक' नामक रोग हैं, यह सभी दुर्भाग्यशाली हैं। इन्हें हम गर्भिणी स्त्री के दोनों मुठकों (डिम्ब ग्रंथियों) औरकटिभाग से दूर करते हैं ॥८,६.५॥

अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम् ।
अरायां ह्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत्॥८,६.६॥

गंध द्वारा नाश करने वाले 'अनुजिघ्र', स्पर्श द्वारा हनन करने वाले 'प्रमृश', मांस-भक्षक क्रव्याद, चाटकर हनन करने वाले रिह', किङ्-किषु करने वाले किंकिण, नित्य

हिंसक तथा धनरहित करने वाले राक्षस रोग-बीजोंको 'पिंगवज' औषधि विनष्ट करे ॥८,६.६॥

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥८,६.७॥

(हे नारी !) सुप्तावस्था में तुम्हारे पास जो (जीवाणु) भाई या पिता बनकर आते हैं, उन क्लीबों (नपुंसकों) को यह 'बज' औषधि हटा दें ॥८,६.७॥

यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्न् अनीनशत्॥८,६.८॥

हे गर्भिणी स्त्री ! स्वप्नावस्था में जो आपको बोधरहित जानकर और जाग्रत् अवस्था में आपके समीप आकर कष्ट पहुँचाते हैं, आप उन सभी रोग-बीजों को उसी प्रकार विनष्ट कर दें, जिस प्रकार अन्तरिक्ष में विचरण करता हुआ सूर्य अन्धकार को विनष्ट करता है ॥८,६.८॥

यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् ।

तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥८,६.९॥

हे औषधे ! जो इस स्त्री को मृत बच्चे वाली अथवा गर्भपात होने वाली करता हैं, ऐसे रोग-बीज को आप विनष्ट करें तथा गर्भ द्वार रूपी कमल को रोगरहित करें ॥८,६.९॥

यह शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः ।
कुसूला यह च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः ।
तान् औषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय ॥८,६.१०॥

गर्दभ की तरह स्वर वाले, कुठिया की आकृति युक्त या सुई के अगले भाग वाले कुसूल नामक बड़ी कोख वाले-कुक्षिल नामक रोग, भयानक आकृतियुक्त-ककुभ, बुरी ध्वनि करने वाले 'करुम' आदि रोगाणु जो सायंकाल घरों के चारों ओर नाचते हैं, हे औषधे !आप अपनी गंध द्वारा उन फैले हुए घातक जीवों को विनष्ट कर डालें ॥८,६.१०॥

यह कुकुन्धाः कुकिरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने यह कुर्वते घोषं तान् इतो नाशयामसि ॥८,६.११॥

जो कुकुध नामक राक्षस रोग, कुत्ते की तरह कुकू शब्द करते हुए हिंसक कृत्यों से दुष्कर्मों को ग्रहण करते हैं और जो पागलों की तरह हाथ-पैर मारते हुए जंगल में शब्द करते घूमते हैं, उन दोनों प्रकार के रोग-उत्पादक कृमियों को हम गर्भिणी से दूर हटाते हैं ॥८,६.११॥

यह सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।
अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि ॥८,६.१२॥

जो आकाश में चमकने वाले सूर्य को सहन करने में असमर्थ हैं, ऐसे अलक्ष्मीक (अशुभ), बकरी के चर्म की तरह दुर्गन्धयुक्त, रक्तयुक्त मुख वाले, टेढ़ी गति वाले, ऐसे सभी प्रकार के रोगाणुओं को हम विनष्ट करते हैं ॥८,६.१२॥

य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति ।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥८,६.१३॥

जो (सूर्य या इन्द्र) आत्मतत्त्व को कंधे पर धारण करके विचरते हैं, वह स्त्रियों के कटिभाग को पीड़ित करने वाले रोग-कृमियों को विनष्ट कर डालें ॥८,६.१३॥

यह पूर्वे बध्वो यन्ति हस्ते शृङ्गानि बिभ्रतः ।
आपाकेस्थाः प्रहासिन स्तम्बे यह कुर्वते ज्योतिस्तान् इतो नाशयामसि ॥८,६.१४॥

जो पैशाचिक कृमि आगे-आगे हाथ में सींग (इंकों) को लेकर विचरते हैं और जो भोजनालयों में रहते हुए हँसी-विनोद करते हैं, जो गृह, स्तम्भ आदि में प्रकाश उत्पन्न करते हैं, ऐसे सभी रोग कृमियों को हम गर्भिणी के आवास स्थल से दूर हटाते हैं ॥८,६.१४॥

यहषां पश्चात्प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा यह च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः ।
तान् अस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥८,६.१५॥

जिनके पैर पीछे, एड़ियाँ और मुख आगे हैं, ऐसे राक्षस रोगों, धान्य शोधन स्थल (खल) में उत्पन्न कृमियों, गौ के गोबर और घोड़े की लीद आदि में उत्पन्न होने वाले, बड़े मुख वाले अथवा मुखरहित, मुर्-मुट् कष्टमय शब्द करने वाले, बड़े अण्डकोशों वाले और वायु के समान गतिमान् रहते हैं, ऐसे सभी प्रकार के राक्षसरूप रोगाणुओं को, हे ज्ञान के स्वामी ब्रह्मणस्पते ! आप अपने ज्ञान से नष्ट कर दें ॥८,६.१५॥

पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः ।
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम् ॥८,६.१६॥

विस्फारित नेत्रों से युक्त और पतले जंघा भाग वाले जो राक्षस हैं, वह स्त्रियों के पीड़क होने से, उनके विरोध स्वरूप वह स्त्रियों से विहीन अथवा सर्प हो जाएँ। जो असंयमी (कामासक्त) राक्षस प्रवृत्ति के मनुष्य स्वप्न अवस्था में इस स्त्री को पाने की कामना करते हैं, हे औषधे ! आप उन्हें विनष्ट करें ॥८,६.१६॥

उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् ।

उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम् ।
पदा प्र विध्य पाष्ण्र्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना ॥८,६.१७॥

प्रखररूप में दबाने वाले, मुनि के समान जटाधारी 'मुनिकेश', हिंसक प्रवृत्ति के 'भरीमृश' गर्भिणी स्त्री को हूँढ़ते फिरने वाले 'उदुम्बल' और भयानक तुण्ड (तौंद) वाले 'शालड़', ऐसे सभी दुष्ट राक्षसों को हे औषधे ! आप उसी प्रकार एड़ी और पैर से रौंद डालें, जिस प्रकार दूध दुहाने के पश्चात् कूदने वाली अथवा दुष्ट प्रकृति की गौ दूध के बर्तन में लात मार देती है ॥८,६.१७॥

यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते ।
पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥८,६.१८॥

हे गर्भिणी !आपके गर्भ को खण्डित करने या जन्मे हुए शिशु को मारने के इच्छुक राक्षस को यह औषधि पैर से कुचल डाले । हे श्वेत औषधे ! आप प्रचण्ड गतिमान् होकर गर्भ घातक राक्षस के हृदय को पीड़ित करें ॥८,६.१८॥

यह अम्नो जतान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते ।

स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु ॥८,६.१९॥

जो राक्षस (रोग) आधे उत्पन्न हुए गर्मों को विनष्ट करते हैं और जो नारी का छद्मरूप बनाकर सूतिका गृह में सोते हैं, उन गर्भधारिणी स्त्रियों को अपना हिस्सा समझने वाले गन्धर्व राक्षसों को 'पिंग बज' औषधि (श्वेत सर्षप) उसी प्रकार दूर करे, जैसे जलविहीन मेघ को वायु हटाते हैं ॥८,६.१९॥

परिसृष्टं धरयतु यद्धितं माव पादि तत्।
गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥८,६.२०॥

विकसित तथा स्थिर गर्भ को गिरने न दें ।वस्त्र या नियम में रखने वाली उम औषधि गर्म की रक्षा करे ॥८,६.२०॥

पवीनसात्तङ्ग॰ल्वाच्छायकादुत नग्नकात्।
प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥८,६.२१॥

वज़ के समान नाक वाले, बड़े गाल वाले तङ्ग॰व, सायक(काल) और नग्नक (नगे), इन राक्षस रोग कृमियों से

सन्तान और पति सुख के निमित्त, यह पिंग औषधि तुम्हारी रक्षा करे ॥८,६.२१॥

द्व्यास्याच्चतुरक्षात्पञ्चपदादनङ्गुरेः ।
वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात्॥८,६.२२॥

हे औषधे ! आप दो मुख वाले, चार आँख वाले, पाँच पैर वाले, अंगुलिहित, लतापुत्र के समान पैर वाले, मुख को नीचे की ओर करके चलने वाले और सभी अंगों में व्यापनशील रोग कृमियों से रक्षा करें ॥८,६.२२॥

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च यह क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तान् इतो नाशयामसि ॥८,६.२३॥

जो राक्षस (रोग कृमि) कच्चे मांस को खाते हैं, जो पुरुषों के भी मांस को खाते हैं, जो बड़े-बड़े केश वाले राक्षस छद्मरूप में प्रविष्ट होकर गर्मों का भक्षण करते हैं, ऐसे तीनों प्रकार के राक्ष-रोगों को हम गर्भिणी स्त्री के समीप से दूर करते हैं ॥८,६.२३॥

यह सूर्यात्परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि ।
बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयहऽधि नि विध्यताम् ॥८,६.२४॥

श्वसुर को देखकर जैसे बहू हट जाती है, उसी प्रकार जो सूर्य को देखकर पलायन कर जाते हैं, उन (कृमियों) के हृदयों को यह पिंग बज वेध डाले ॥८,६.२४॥

पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् ।
आण्डादो गर्भान् मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः ॥८,६.२५॥

हे पिंग ओषथे ! आप उत्पन्न हुई सन्तान का संरक्षण करें, उत्पन्न हुए पुरुष गर्भ अथवा स्त्री गर्भ को भूतबाधा से संरक्षित करें । अण्ड प्रदेश को खाने वाले कृमि, गर्भ को विनष्ट न कर सकें । हे औषधे ! आप इन कृमियों को गर्भिणी के समीप से दूर भगाएँ ॥८,६.२५॥

अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद्रोदमघमावयम् ।
वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रियह प्रति मुञ्च तत्॥८,६.२६॥

(हे औषधे अथवा देव शक्तियो !) आप संतानहीनता, बाल मृत्यु, हृदय के रुदन और पापों के भोगादि को शत्रुओं के ऊपर इस प्रकार डालें, जिस प्रकार वृक्ष से उत्पन्न फूलों की माला किसी को पहना दी जाती है ॥८,६.२६॥

॥अथर्ववेद – अष्टम काण्डम्॥

सूक्त ७- औषधि समहु सूक्त

आयुष्य ओषधियों का वर्णन,

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अछावदामसि ॥८,७.१॥

भूरे, सफेद, लाल, नीले और काले, ऐसे विभिन्न वर्गों तथा छोटे शरीर वाली औषधियों के सम्मुख जाकर, रोग निवारण के लिए हम उन्हें पुकारते हैं ॥८,७.१॥

त्रायन्तामिमं पुरुसं यक्ष्माद्देवेषितादधि ।
यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥८,७.२॥

जिनकी माता पृथ्वी, पिता द्युलोक तथा मूल समुद्र (जल) है, ऐसी औषधियाँ दैवी प्रकोप से अभिप्रेरित रोग के प्रभाव से इस मनुष्य को बचाएँ ॥८,७.२॥

आपो अग्रं दिव्या ओषधयः ।
तास्ते यक्ष्ममेनस्यमङ्गादङ्गादनीनशन् ॥८,७.३॥

हे रोगी पुरुष ! सामने उपस्थित जल और दिव्य औषधियाँ, आपके दुष्कर्मों के पाप से उत्पन्न यक्ष्मा (रोग) को अंग-प्रत्यंगों से निष्कासित करें ॥८,७.३॥

प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि ।
अंशुमतीः कण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥८,७.४॥

विशेष विस्तारवाली, गुच्छकवाली, एक कोपल वाली और अति प्रशाखाओं वाली औषधियों को हम आवाहित करते हैं। अंशुमती (अनेक अंशों से युक्त) काण्डों (गाँठों) वाली , अनेक प्रकार की शाखाओं से युक्त, सभी देवशक्तियों से सम्बन्धित, प्रभावमयी, जीवनदायिनी औषधियों को आप (रोग) के निमित्त हम आवाहित करते हैं ॥८,७.४॥

यद्वः सहः सहमाना वीर्यं१ यच्च वो बलम् ।

तेनेममस्माद्यक्ष्मात्पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥८,७.५॥

हे रोगनिवारक औषधियो ! आपमें रोग को दूर करने की जो सामर्थ्य और बलिष्ठता है, उससे आप इस रोगी को यक्ष्मा रोग से बचाएँ, इसी उद्देश्य से हम औषधि को तैयार कर रहे हैं ॥८,७.५॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातयह ॥८,७.६॥

हम जीवनदायिनी, हानिरहित, रोपणवाली अथवा रुकावटरहित, उठाने वाली (ऊपर की ओर जाने वाली) मीठी और फूलों वाली औषधियों को यहाँ लोकहित के उद्देश्य से आरोग्यलाभ हेतु आवाहित करते हैं ॥८,७.६॥

इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ८,७.॥७॥

विशिष्ट ज्ञानयुक्त वैद्य के मन्त्ररूप वचनों से पुष्टिकारक औषधियाँ यहाँ आगमन करें । जिससे हम इस रोगी मनुष्य को रोगरूप पापों से पार उतार सकें ॥८,७.७॥

अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः ।
ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः ॥८,७.८॥

जो औषधियाँ जल की गर्भरूप और अग्नि का खाद्य होने पर बार-बार नवीन जैसी उत्पन्न होती हैं, वह सहस्र नाम वाली, स्थिरता सम्पन्न औषधियाँ यहाँ लाई जाएँ ॥८,७.८॥

अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः ।
व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ॥८,७.९॥

जल ही जिनकी प्राण चेतना है, ऐसी शैवाल में पैदा होने वाली तीक्ष्ण गन्धयुक्त, तीखे सींगों के आकार वाली जो औषधियाँ हैं, वह पापरूपी रोग को विनष्ट करें ॥८,७.९॥

उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषनीः ।

अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥८,७.१०॥

रोग निवारण करने वाली, जलोदर आदि रोगों की निवारक, रोग निवारण की प्रचण्ड क्षमता से सम्पन्न विषनाशक, कफनाशक और मारक प्रयोगों की नाशक, ऐसी जो भी औषधियाँ हैं, वह यहाँ आगमन करें ॥८,७.१०॥

अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः ।
त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥८,७.११॥

क्रय से रहित बल्कि स्वयं जाकर प्राप्त की गई, रोगों को अपनी प्रभाव क्षमता द्वारा दूर करने वाली जो मन्त्रों से प्रशंसित (अभिमन्त्रित) औषधियाँ हैं, वह इस ग्राम में गाय, अश्वादि पशुओं और मनुष्यों का संरक्षण करें ॥८,७.११॥

मधुमन् मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन् मध्यं वीरुधां बभूव ।
मधुमत्पर्णं मधुमत्पुष्पमासां मधोः सम्भक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् ॥८,७.१२॥

इन औषधियों के मूल, मध्य, अग्रभाग, उनके पत्ते और फूल सभी मीठे होते हैं यह औषधियाँ मधुर रस से सिञ्चित तथा अमृत का सेवन करने वाली हैं । यह गौओं को प्रधान स्थान तथा घृतादि अन्न देने वाली बनाएँ ॥८,७.१२॥

यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः ।
ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः ॥८,७.१३॥

पृथ्वी में पैदा हुई असंख्य पत्तों वाली जो औषधियाँ हैं, वह हमें पापरूपी मृत्यु से बचाएँ ॥८,७.१३॥

वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमानोऽभिशस्तिपाः ।
अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत्॥८,७.१४॥

औषधियों द्वारा बनायीं गई, व्याघ्र जैसी पराक्रमी 'मणि' रोगरूप पापों से संरक्षण करने वाली हैं, वह मणि सभी रोगों और रोग कृमियों को अन्यत्र ले जाकर विनष्ट करे ॥८,७.१४॥

सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्ते आभृताभ्यः ।

गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः ॥८,७.१५॥

जिस प्रकार सिंह की गर्जना और अग्नि की प्रचण्ड ज्वाला से प्राणी घबरा जाते हैं, उसी प्रकार इन प्राप्त की गई औषधियों से भगाए गए गौ आदि पशुओं और मनुष्यों के रोग, नौकाओं से गमन करने योग्य नदियों को लाँघकर सुदूर प्रस्थान करें ॥८,७.१५॥

मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि ।
भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥८,७.१६॥

जिन औषधियों के अधिपति वनस्पति देव हैं, जो भूमि को आच्छादित कर लेती हैं, ऐसे रोगों की निवारक औषधियाँ वैश्वानर अग्नि पर आधारित होती हैं ॥८,७.१६॥

या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च ।
ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ॥८,७.१७॥

महर्षि अंगिरा द्वारा विवेचित जो मंगलकारिणी औषधियाँ पर्वतीय क्षेत्रों और समतल स्थानों में पैदा होती हैं, वह दूध की तरह सारयुक्त होकर हमारे हृदय स्थल को सुख-शान्ति देने वाली हों ॥८,७.१७॥

याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा ।
अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम् ॥८,७.१८॥

जिन औषधियों के सम्बन्ध में हम जानते हैं और जिन्हें आँखों से देखते हैं। जिन अज्ञात औषधियों को हम जानें, उन सबमें रोगों को दूर करने के तत्त्व विद्यमान हैं, इस तथ्य को हम जानते हैं ॥८,७.१८॥

सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥८,७.१९॥

वह समस्त परिचित-अपरिचित औषधियाँ हमारे अभिप्राय को समझें, ताकि इस रोगी को हम पापरूपी रोग से मुक्त करने में सफल हों ॥८,७.१९॥

अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः ।
व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवसि पुत्रावमर्त्यौ ॥८,७.२०॥

पीपल, कुशा, औषधियों का राजा सोम, अमृत हवियाँ, धान और जौ आदि यह सब अमर औषधियाँ है। यह सब द्युलोक की संतानें हैं ॥८,७.२०॥

उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः ।
यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥८,७.२१॥

पृथ्वी जिनकी माता है, ऐसी हैं औषधियो ! जब पर्जन्य गर्जनयुक्त शब्द करता है, तब ऊपर उठो (बढ़ी, इस प्रक्रिया द्वारा पर्जन्य अपने रेतस्(उर्वर रस-जल) द्वारा तुम्हारा संरक्षण करता है ॥८,७.२१॥

तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पययामसि ।
अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः ॥८,७.२२॥

उस औषधि समूह की अमृतरूप सामर्थ्य को हम इस पुरुष को पिलाते हैं, इस प्रकार हम इसे औषधि सेवन कराते हैं, जिससे यह शतायु लाभ प्राप्त करें ॥८,७.२२॥

वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् ।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥८,७.२३॥

जिन औषधियों को सुअर, नेवला, सर्प और गन्धर्व जानते हैं, उन्हें हम इस रोगी मनुष्य के संरक्षण हेतु आवाहित करते हैं ॥८,७.२३॥

याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघतो विदुः ।
वयांसि हंसा या विदुर्यास्च सर्वे पतत्रिणः ।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥८,७.२४॥

अंगिरा ने जिन सुन्दर पत्तों वाली औषधियों का प्रयोग किया, जिन दिव्य औषधियों की ज्ञा पशु-पक्षी और हंस हैं, उन सभी प्रकार की औषधियों को हम इस रोगी पुरुष के संरक्षण हेतु बुलादे हैं ॥८,७.२४॥

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यवतीनामजावयः ।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥८,७.२५॥

जिन औषधियों को अहिंसति गौएँ रोग-निवारण के लिए भक्षण करती हैं और जिन्हें भेड़-बकरियाँ खाती हैं, वह सभी लाई गई औषधियाँ आपके निमित्त कल्याणकारी हों ॥८,७.२५॥

यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः ।
तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥८,७.२६॥

औषधि-विशेषज्ञ चिकित्सक जितनी औषधियों (औषधि प्रयोग) के ज्ञाता हैं, उन सभी औषधियों को हम आपके कल्याण के निमित्त यहाँ लेकर आ चुके हैं ॥८,७.२६॥

पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत ।
संमातर इव दुह्वामस्मा अरिष्टतातयह ॥८,७.२७॥

पुष्पवती, पल्लवों वाली, फलोंवाली और फलरहित यह सभी औषधियाँ इस पुरुष के सुख-शान्ति के विस्तार हेतु श्रेष्ठ माताओं के समान दुही जाएँ ॥८,७.२७॥

उत्त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद्विश्वस्माद्देवकिल्बिषात्॥८,७.२८॥

पाँच प्रकार के (पाँच कर्मेन्द्रियों) तथा दस प्रकार के (दसों इन्द्रियों के) कष्टों से, यम के बन्धनों से तथा सभी देवों के प्रति किए गए पापों से, तुम (आरोग्य की इच्छा वाले) को ऊपर उठाया गया (मुक्त किया गया) है ॥८,७.२८॥

॥अथर्ववेद – अष्टम काण्डम्॥

सूक्त ८- शत्रुपराजय सूक्त

इंद्र की स्तुति पीपल और खैर के वृक्ष, इंद्र से शत्रु वध का आग्रह तथा सूर्य की प्रशंसा और मत्यु दतों से शत्रु वध का आग्रह

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः ।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥८,८.१॥

शत्रुओं की नगरियों को ध्वस्त करने वाले इन्द्रदेव शूरवीर और समर्थ हैं तथा शत्रु के सैन्य दल को मथने वाले हैं। वह मंथन प्रारम्भ करें, जिससे हम शत्रु सेना को विभिन्न ढंग से मार सकें ॥८,८.१॥

पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम् ।
धूममग्निं परादृश्याऽमित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् ॥८,८.२॥

शत्रु सेना पर प्रहार हेतु जलाई गई दुर्गन्धयुक्त रस्सी, इस शत्रु सेना में दुर्गन्धित धुआँ पैदा करे । धुएँ और अग्नि को

देखकर हमारे अमित्रों के हृदय में भय स्थापित हो ॥८,८.२॥

अमून् अश्वत्थ निः शृणीहि खादामून् खदिराजिरम् ।
ताजद्भङ्ग इव भजन्तां हन्त्वेनान् वधको वधैः ॥८,८.३॥

हे अश्वत्थ (पीपल अथवा अश्वारोही) ! आप इन शत्रुओं का संहार करें । हे खदिर ! (खैर वृक्ष अथवा शत्रु भक्षक) आप इन शत्रुओं का भक्षण करें । यह एरण्ड की तरह टूट जाएँ, वध करने वाले उपकरणों से इनका हनन करें ॥८,८.३॥

परुषान् अमून् परुषाह्वः कृणोतु हन्त्वेनान् वधको वधैः ।
क्षिप्रं शर इव भजन्तां बृहज्जालेन संदिताः ॥८,८.४॥

परुष (कठोर) आवाहन उक्तियाँ इन्हें (सैनिकों को उत्तेजित करें और वध करने वाले शस्त्र हिंसक विधियों से इनका वध करें ।बड़े जाल (व्यूह) से बँधे हुए, यह शत्रुगण शर (सरकण्डे) की तरह सहज ही टूट जाएँ ॥८,८.४॥

अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः ।

तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत्॥८,८.५॥

अन्तरिक्ष जालरूप है और विस्तृत दिशाएँ जाल के दण्ड (सीमा) रूप में प्रयुक्त हुई हैं । उस जाल ने दस्युओं की सेना को बाँधकर, उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया है ॥८,८.५॥

बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः ।
तेन शत्रून् अभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम्
॥८,८.६॥

सैन्यदल के साथ रहने वाले महिमामय इन्द्रदेव का जाल बड़े आकार का है । हे इन्द्रदेव ! उससे आप सभी शत्रुओं को, सभी ओर से अपने अधीन करें, जिससे इनमें से कोई भी छूटने न पाएँ ॥८,८.६॥

बृहत्ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय
सेनया ॥८,८.७॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! यज्ञों में असंख्य धन-सम्पदा (अर्थ) प्राप्त करने वाले अथवा हजारों द्वारा पूजनीय और सैकड़ों पराक्रमी कार्य करने वाले महिमामय आपका जाल विशाल है । इन्द्रदेव ने सैन्य-शक्ति से, इसी जाल से, शत्रुओं को पकड़कर सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों दस्युओं का संहार किया था ॥८,८.७॥

अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ॥८,८.८॥

यह लोक ही महान् इन्द्रदेव का महिमामय बड़ा जाल है, उस इन्द्रजाल से सभी शत्रुओं को हम अन्धकार से घेरते हैं ॥८,८.८॥

सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना ।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमून् अभि दधामि सर्वान् ॥८,८.९॥

बड़ी थकान (पाप देवी पिशाचिनी), भयंकर निर्धनता, अकथनीय व्यथा, कष्टमय परिश्रम, तन्द्रा (आलस्य) और

मोहादि से, इन सभी शत्रुओं को हम विनष्ट करते हैं ॥८,८.९॥

मृत्यवेऽमून् प्र यछामि मृत्युपाशैरमी सिताः ।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥८,८.१०॥ {२०}

हम इन शत्रुओं को मृत्यु की भेंट करते हैं। यह शत्रु मृत्युपाश से बँध चुके हैं, इन्हें बाँधकर हम मृत्यु दूतों की ओर ले जाते हैं ॥८,८.१०॥

नयतामून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत ।
परःसहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥८,८.११॥

हे मृत्यु दूतो ! इन शत्रुओं को ले जाओ । हे यमदूतो ! इनसे नरक को पूर्ण करते हुए, हजारों सैनिकों को मृत्यु की भेंट करो । रुद्रदेव का आयुध इनका संहार करे ॥८,८.११॥

साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा ।
रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः ॥८,८.१२॥

साध्यदेव एक 'जाल-दण्ड' को उठाकर बलपूर्वक शत्रुओं की ओर जाते हैं, इसके साथ एक 'जाल-दण्ड' को रुद्रदेव, एक को वसुदेव और आदित्य देवों ने एक-एक जाल-दण्ड को उठाया है ॥८,८.१२॥

विश्वे देवाः उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा ।
मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् ॥८,८.१३॥

विश्वेदेवा (समस्त देवगण) ऊपरी भाग से दुष्ट शत्रुओं को दबाते हुए बलपूर्वक गमन करें और आंगिरस बीच में सेना का संहार करके भूमि पर फेंक दें ॥८,८.१३॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यान् ओषधीरुत वीरुधः ।
द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥८,८.१४॥

हम वनस्पतियों, वनस्पतियों द्वारा बनी हुई औषधियों, लताओं और दो पैर वाले मनुष्यादि तथा चार पैर वाले हिंसक पशुओं को मं-सामर्थ्य से प्रेरित करते हैं, जिससे वह शत्रु की सैन्य शक्ति के संहार में सक्षम हों, ॥८,८.१४॥

गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
दृष्टान् अदृष्टान् इष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥८,८.१५॥

गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, देवगण, पुण्यजनों, देखे गए तथा न देखे गए पितरजनों को हम इस ढंग से प्रेरित करते हैं, जिससे वह शत्रु सेना के विनाश में सक्षम हों ॥८,८.१५॥

इम उप्ता मृत्युपाशा यान् आक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥८,८.१६॥

हे शत्रुओ ! ऐसे हजारों मृत्यु के पाश रख दिए गए हैं, जिनको पार करते समय तुम्हारा सुरक्षित रहना कठिन है । यह कूट इस शत्रु सेना को हजारों विधियों से संहार करे ॥८,८.१६॥

घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः ।
भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् ॥८,८.१७॥

यह प्रज्वलित हव अग्नि द्वारा अच्छे ढंग से प्रज्वलित हुई है । यह होम हजारों शत्रुओं की संहारक क्षमता में युक्त है । है सफेद बाहुवाले भव और शर्व देवो ! आप इस सेना का विनाश करें ॥८,८.१७॥

मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् ।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् ॥८,८.१८॥

यह शत्रु मृत्यु भुख, निर्धनता और भय को प्राप्त हों । हे इन्द्र और शर्व !आप दोनों शत्रुसेना का संहार करें ॥८,८.१८॥

पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पतिप्रनुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥८,८.१९॥

हे दुष्ट शत्रुओ ! तुम मन्त्र सामर्थ्य से पराजित होकर और संत्रस्त होकर मन्त्र प्रयोग द्वारा खदेड़े जाने पर भाग जाओ । मन्त्रों के अधिष्ठाता बृहस्पतिदेव द्वारा भगाए गए शत्रुओं में से कोई भी सुरक्षित न बच सकें ॥८,८.१९॥

अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।

अथैषां बहु बिभ्यतामिषवः घ्नन्तु मर्मणि ॥८,८.२०॥

इन शत्रुओं के अस्त्र-शस्त्र नीचे गिर जाएँ, पुन: यह बाण को धनुष पर चढ़ाने में सफल न होने पाएँ । भयभीत स्थिति में इनके मर्म स्थल बाणों से बीधे जाएँ ॥८,८.२०॥

सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥८,८.२१॥

द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और देवगण इन्हें शाप दें, इससे यह शत्रु प्रतिष्ठारहित होकर अथर्ववेदीय ज्ञान-विज्ञान से वञ्चित रहें तथा आपस में ही वैर-विरोध करते हुए मृत्यु को प्राप्त हों ॥८,८.२१॥

दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोदाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः ।
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किम्करा वाक्परिरथ्यम् ॥८,८.२२॥

चार दिशाएँ ही देवरथ की घोड़ियाँ, पुरोडाश ही खुर, अन्तरिक्ष ऊपर का भाग, द्युलोक और पृथ्वी यह दोनों पक्ष हैं, ऋतुएँ हीं लगामें, अन्तर्देश (उप दिशाएँ संरक्षकरूप और वाणी रथ की परिधि है ॥८,८.२२॥

संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम् ।
इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः ॥८,८.२३॥

'संवत्सर' ही रथरूप, 'परिवत्सर' रथ में बैठने का स्थल, 'विराट् जोतने का दण्ड, 'अग्नि' इस रथ के मुख्य रूप, इन्द्रदेव बाईं तरफ विराजने वाले और चन्द्रमा सारथि रूप हैं ॥८,८.२३॥

इतो जयहतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः ।
नीललोहितेनामून् अभ्यवतनोमि ॥८,८.२४॥

इधर से 'जय' और उधर से 'विजय' प्राप्त हो। हम भली प्रकार जय प्राप्त करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित हो । हमारे यह मित्र वीर विजयशील हों, शत्रु सैनिक पराजित

हो जाएँ, इसके लिए आहुति समर्पित हो। नील एवं लोहित (ज्वालाओं) से हम सभी शत्रुओं को दमित करते हैं ॥८,८.२४॥

॥अथर्ववेद – अष्टम काण्डम्॥

सूक्त ९- विराट् सूक्त

विराट और विराट के दोनों वत्सों का वर्णन, सूर्य, चंद्र एवं अग्नि का वर्णन, छः मास और सात होम का वर्णन

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात्कतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृछामि कतरेण दुग्धा ॥८,९.१॥

वह दोनों चेतन और जड़ तत्त्व कहाँ से पैदा हुए? वह कौन सा अर्धभाग है जिससे सृष्टि उत्पन्न हुई? किस लोक से तथा भूमि के किस भाग के सलिल अर्थात जल अथवा मूल द्रव्यों से विराट् के दोनों बच्चे उत्पन्न हुए ? मैं उन दोनों के बारे में आपसे पूछता हूँ कि उनमें से यह प्रकृति रूप गाय किसके द्वारा दुहीं जाती है ? ॥८,९.१॥

यो अक्रन्दयत्सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।

वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥८,९.२॥

जो त्रिभुज उत्पत्ति स्थल में शयन करने वाला है, जो अपनी महत्ता से महत् सलिल को उत्तेजित करता है, वह आत्मतत्त्व दूरस्थ गुहाओं में अपने लिए शरीरों की रचना करता है ॥८,९.२॥

यानि त्रीणि बृहन्ति यहषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् ।
ब्रह्मैनद्विद्यात्तपसा विपश्चिद्यस्मिन्न् एकं युज्यते यस्मिन्न् एकम् ॥८,९.३॥

जो तीन बड़े महिमायुक्त ब्रह्म, प्रकृति एवं जीव हैं, इनके संयोग से उत्पन्न चौथा शरीर ही वाणी को प्रकट करता है । ज्ञानीजन तपश्चर्या द्वारा इस 'ब्रह्म' परमात्मतत्त्व को समझें । इनमें से एक जीव, एक परब्रह्म से जुड़ता है ॥८,९.३॥

बृहतः परि सामानि षष्ठात्पञ्चाधि निर्मिता ।
बृहद्बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ॥८,९.४॥

बृहत् तत्त्व से उत्तम पाँच सामों से पंच प्राणों की रचना हुई है, उनसे छठे अर्थात शरीर का निर्माण हुआ है। उस बृहत्तत्त्व से बृहत्सृष्टि की उत्पत्ति हुई है, जानने योग्य यही है कि इस बृहत् तत्त्व की उत्पत्ति कहाँ से हुई है? ॥८,९.४॥

बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥८,९.५॥

बृहती अर्थात प्रकृति की मात्रा से, माता की मात्रा तन्मात्राएँ निर्मित हुई हैं। माया अर्थात माता से निश्चितरूप से प्रकृति रूप माया उत्पन्न हुई और माया के ऊपर माया प्रकृति का मातली अर्थात निरीक्षक नियुक्त है ॥८,९.५॥

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद्रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ॥८,९.६॥

वैश्वानर-अग्निदेव की प्रतिमा अर्थात आभा- ऊर्जा के ऊपर ही स्वर्गलोक स्थित है। जहाँ तक अग्निदेव, द्युलोक और भूलोक को बाध्य करते हैं अर्थात प्रेरित करते हैं, तब वह

छठवाँ स्तोमों अर्थात वाणी से मंत्रों को प्रकट करता है। दिन के उदय होने पर वही छठे पंचाग्नियों से भिन्न यज्ञाग्नि की ओर उन्मुख होता है॥८,९.६॥

षट्त्वा पृछाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥८,९.७॥

हे कश्यप ! आप युक्त और योग्य का श्रेष्ठ विधि से योग करने में कुशल हैं, इसलिए हम छह तत्त्वज्ञ ऋषि आपसे प्रश्न पूछते हैं कि विराट् पुरुष को सृष्टि निर्माता ब्रह्मा का पिता कहते हैं, इस सम्बन्ध में हम ऋषि मित्रों को जितनी रीतियों से सम्भव हो, उतने ढंग से समझाएँ ॥८,९.७॥

यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराट्ऋषयः परमे व्योमन् ॥८,९.८॥

हे ऋषिगण ! जिस विराट् पुरुष के गतिमान् होने पर यज्ञीय प्रक्रियाएँ गतिशील होती हैं तथा विराट् के स्थिर होने प्रलयकाल में, सृष्टि की धुरी यज्ञ प्रक्रिया भी स्थिर हो जाती है । जिसके स्तुति रूप से कर्म में प्रकट होने पर यजन करने योग्य दैवी भावनाएँ हिलोरें लेने लगती हैं, ऐसे विराट् पुरुष परम श्रेष्ठ व्योम में विद्यमान हैं ॥८,९.८॥

अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट्स्वराजमभ्येति पश्चात्।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥८,९.९॥

हे ऋषियो ! प्राणरहित विराट्, प्राणधारी प्रजाओं के प्राणरूप में आगमन करते हैं, तत्पश्चात् विराट् स्वयं प्रकाशमाने के समीप जाते हैं। सबको स्पर्श करते हुए इस विराट् को कुछ सूक्ष्मदर्शी देखने में समर्थ हैं; परन्तु मोह-माया से भ्रमित अज्ञानग्रस्त लोग इसे देख नहीं पाते ॥८,९.९॥

को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून् क उ कल्पमस्याः ।

क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥८,९.१०॥

इस विराट् के प्रकृति और पुरुष के जोड़े को कौन जानते हैं ? कौन तत्त्वों और कौन इसके कल्पों को जानते हैं? इसके क्रमों को कौन जानते हैं? कितनी बार इसका दोहन किया गया, इस सम्बन्ध में कौन जानते हैं ? इसके धाम के ज्ञाता कौन हैं और इसके प्रभातकाल कितने प्रकार के होते हैं, इन सबके ज्ञाता कौन हैं ? ॥८,९.१०॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौछदास्वितरासु चरति प्रविष्टा । महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥८,९.११॥

यह उषा वही है, जो पहली बार सृष्टिकाल में प्रकाशित हुई । यही इस प्रकृति और अन्य भूतों में प्रविष्ट होकर चलती हैं। इस उषा में बड़ी-बड़ी शक्तियाँ हैं। यह नूतन जन्मदात्री वधू के समान सबको जीत लेती है ॥८,९.११॥

छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेमे ।

सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥८,९.१२॥

छन्दों अर्थात वेद मन्त्रों के विभिन्न पक्ष भी उषा से ही सुन्दर बनते हैं। दिव्यज्ञान प्रकाश के उषाकाल- दिव्यबोध के समय ही वेद मन्त्र प्रकट होते हैं । और एक ही लक्ष्य की ओर गमन करते हैं । सूर्यपत्नी, प्रकाशयुक्त उषा अपने ज्योतिरूप अत्यन्त महान् रेतस् अर्थात उत्पादक तेज के द्वारा संचरित होती है ॥८,९.१२॥

ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥८,९.१३॥

सत्यमार्ग में अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा, यह तीनों अपने तेजस्वितायुक्त वीर्य के साथ जाते हैं। इनमें प्रथम की सामर्थ्य ऋत्विजों की संतुष्टि, दूसरे की शक्ति-बल के पोषण और तीसरे की शक्ति देवत्व के उपासक ऋत्विज्ञों के राष्ट्र प्रकाशमान क्षेत्र या यज्ञ का संरक्षण करती है ॥८,९.१३॥

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद्यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्कीं यजमानाय
स्वराभरन्तीम् ॥८,९.१४॥

अग्नि और सोम, यह दो यज्ञ के पक्ष हैं, ऐसा ऋषियों ने माना है। चौथा गायत्री, त्रिष्टुभु, जगती, अनुष्टुभ् आदि छन्दों के द्वारा यजमान में स्व को प्रकाशित करने वाली बृहत् ज्ञान एवं यज्ञ की उपासना पद्धति को धारण कराता है ॥८,९.१४॥

पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम्
॥८,९.१५॥

पाँच उषा शक्तियों के अनुकूल पाँच दोहन समय हैं, पाँच नामवाली गाय के अनुकूल पाँच ऋतुएँ हैं। पाँच दिशाएँ, पन्द्रहवें अर्थात चौदह भुवनों से परे पन्द्रहवें महत् तत्त्व से समर्थ होकर, किसी योगी के लिए एक लोक जैसी हो जाती हैं ॥८,९.१५॥

षट्जाता भूता प्रथमजा ऋतस्य षटु सामानि षटहं वहन्ति ।
षट्योगं सीरमनु सामसाम षटाहुर्द्यावापृथिवीः षटुर्वीः
॥८,९.१६॥

प्रारम्भ में ऋत से छह भूत-पाँच तत्त्व और छठवाँ मन, छह साम उनकी तन्मात्राएँ तथा उनके संयोग से छह प्रकार के 'अहं' उत्पन्न हुए। यह छह युग्मों से जुड़े बन्धनों के साथ छह साम प्रवृत्तियाँ जुड़ी हैं । धुलोक से पृथ्वीं तक छह लोक है। भूमि भी छह पर्तवाली हैं ॥८,९.१६॥

षडाहुः शीतान् षडु मास उष्णान् ऋतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः
॥८,९.१७॥

छह मास शीत ऋतु और छह मास ग्रीष्म ऋतु के कहे गए हैं, इनके अतिरिक्त शेष जो हैं, उनके सम्बन्ध में हमें बताएँ । ज्ञानीजन सात सुपर्ण, सात छन्द और सात दीक्षाओं से सम्बन्धित ज्ञान रखते हैं ॥८,९.१७॥

सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्त ऋतवो ह सप्त ।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम्
॥१८॥

सात यज्ञ, सात समिधाएँ, सात ऋतुएँ और सात प्रकार के मधु हैं । सात प्रकार के घृत इस जगत् में मनुष्य को उपलब्ध होते हैं। इनके साथ सात गृध भी हैं, ऐसा हम सुनते हैं ॥८,९.१८॥

सप्त छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्न् अध्यार्पितानि ।
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि
॥१९॥

सात छन्द और चार श्रेष्ठ वेद विभाग हैं, यह सभी परस्पर एक-दूसरे में समाहित हैं। उनमें स्तोम कैसे विराजमान हैं और वह स्तोमों में कैसे समर्पित हैं ? ॥८,९.१९॥

कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप कथं त्रिष्टुप्पञ्चदशेन कल्पते ।
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप्कथमेकविंशः ॥२०॥ {२३}

गायत्री त्रिवृत् को कैसे संव्याप्त करती है, त्रिष्टुप् पन्द्रह से किस प्रकार निर्मित है, तैंतीस से जगतीं और इक्कीस से अनुष्टुप् कैसे सम्बन्ध रखते हैं? ॥८,९.२०॥

अष्ट जाता भूता प्रथमजा ऋतस्याष्टेन्द्र ऋत्विजो दैव्या यह ।
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्रास्तमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥२१॥

सत्य से सर्वप्रथम आठ प्राणियों की उत्पत्ति हुई। हे इन्द्रदेव! जो दिव्य ऋत्विज् हैं, वह भी आठ हैं। आठ पुत्रों को उत्पन्न करने वाली अदिति अष्टमी की रात्रि में हविष्यान्न को ग्रहण करती है ॥८,९.२१॥

इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा ।
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥२२॥

इस प्रकार कल्याणकारी भावना को स्वीकार करते हुए आपके समान जन्म लेने वाले, आपके सख्यभाव में हम सुखी हैं। यज्ञ आपका मंगल करने वाला है। वह आप

सबकी जानकारी रखता हुआ आप में संचरित रहता है॥८,९.२२॥

अष्टेन्द्रस्य षड्यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्यान् ओषधीस्तामु पञ्चानु सेचिरे ॥२३॥

इन्द्रदेव की आठ, यमराज की छह और अषियों की सात प्रकार की, सात औषधियाँ हैं। उन औषधियों और मनुष्यों को पाँच प्रकार के अप् अर्थात जल अथवा तेज अनुकूल रीति से सींचते हैं ॥८,९.२३॥

केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्यामसुरान् उत ऋषीन् ॥२४॥

प्रथम दोहन कराती हुई, विलक्षण, प्रथम प्रसूता गौ रुपी प्रकृति ने अमृतमय दूध को इन्द्र के लिए अनुकूल रीति से दिया। तत्पश्चात् देव, मनुष्य, असुर और ऋषि इन चारों को चार प्रकार से संतुष्ट करती है ॥८,९.२४॥

को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः ॥२५॥

वह गौ कौन सी है? वह एक अंष कौन से हैं? धाम और आशीर्वाद कौन से हैं? पृथ्वी में एक ही सर्वव्यापक देव पूजनीय हैं और वह एक प्रमुख ऋतु कौन सी है ? ॥८,९.२५॥

एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते ॥२६॥

वह गौ अकेली है, वह एक ही ऋषि हैं; एक ही स्थान और एक ही प्रकार का आशीर्वाद है । पृथ्वी में एक ही पूजनीय देव हैं तथा एक ही ऋतु भी हैं, जिससे बढ़कर अन्य कोई नहीं है ॥८,९.२६॥

॥अथर्ववेद – अष्टम काण्डम्॥

सूक्त १०- विराट् सूक्त

विराट का वर्णन

विराड्वा इदमग्र आसीत्तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥८,१०.१॥

वह शक्ति पहले से ही विराट् थी ।उस शक्ति से सभी भयभीत हो गए कि यही वह सृष्टिरूप हो जाएगी ॥८,१०.१॥

सोदक्रामत्सा गार्हपत्ये न्यक्रामत्।
गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥८,१०.२॥

उस विराट् शक्ति ने ऊपर की ओर गमन किया और वह गार्हपत्य के रूप में अवतरित हुई।
गृह यज्ञ करने वाले जो इस तथ्य को जानते हैं, वह गृह-पालक होते हैं ॥८,१०.२॥

सोदक्रामत्साहवनीयह न्यक्रामत्।
यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥८,१०.३॥

पुन: वह (विराट् शक्ति) ऊपर की ओर उठकर आहवनीय अग्नि संस्था में प्रविष्ट हो गई जो इस प्रकार जानते हैं, वह देवों के स्नेहपात्र बनते हैं, सभी देवशक्तियाँ उनके आवाहन-स्थल पर जाती हैं ॥८,१०.३॥

सोदक्रामत्सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत्।
यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥८,१०.४॥

पुनः उस विराट् ने ऊपर की ओर उत्थान किया और दक्षिणाग्नि संस्था में प्रवेश किया। जो इस प्रकार जानते हैं, वह यज्ञ करने में पारंगत और दूसरों को निवास स्थल प्रदान करने वाले होते हैं ॥८,१०.४॥

सोदक्रामत्सा सभायां न्यक्रामत्।
यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥८,१०.५॥

इसके बाद वह विराट् शक्ति ऊपर की ओर उठकर सभा में प्रविष्ट हो गई। जो इस विषय के ज्ञाता हैं, वह सभा के योग्य हैं और जनसाधारण उनकी सभा में जाते हैं ॥८,१०.५॥

सोदक्रामत्सा समितौ न्यक्रामत्।
यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥८,१०.६॥

तत्पश्चात् वह विराट् शक्ति ऊपर उत्थान करके समिति में परिणत हो गई। जो इसके ज्ञाता हैं, वह समित्य (समिति या सम्मानयोग्य) होते हैं और उसकी समिति में सैनिक आते हैं ॥८,१०.६॥

सोदक्रामत्सामन्त्रणे न्यक्रामत्।
यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥८,१०.७॥

पुन: विराट् शक्ति उत्थान करके आमन्त्रण (मन्त्रिमण्डल) में प्रविष्ट हो गई। जो इसके ज्ञाता हैं, वह आमन्त्रणीय हो जाते हैं और जन-साधारण उनकी मन्त्रणा में भाग लेते हैं ॥८,१०.७॥

सोदक्रामत्सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत्॥८,१०.८॥

उस विराट् शक्ति ने पुन: उत्थान किया और वह अन्तरिक्ष में चार प्रकार से विभाजित होकर स्थित हुई ॥८,१०.८॥

तां देवमनुष्या अब्रुवन्न् इयमेव तद्वेद यदुभय उपजीवेमेमामुप ह्वयामहा इति ॥८,१०.९॥

देवों और मनुष्यों ने उसके सम्बन्ध में कहा कि वह इसे जानते हैं, जिससे हम दोनों जीवन निर्वाह को प्राप्त करते हैं, अतएव हम इसे बुलाते हैं ॥८,१०.९॥

तामुपाह्वयन्त ॥८,१०.१०॥

तब उन्होंने उसे आवाहित किया ॥८,१०.१०॥

ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥८,१०.११॥

हे ऊर्जा देवि ! हे पितरजनों की तृप्तिप्रदा स्वधे ! हे प्रिय वाणीरूप ! हे अन्नवाली ! आप यहाँ आएँ ॥८,१०.११॥

तस्या इन्द्रो वत्स आसीद्गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ॥८,१०.१२॥

इन्द्रदेव उसके वत्स बने, गायत्री रस्सी थी और मेघ दुग्ध स्थल रूप हुए
॥८,१०.१२॥

बृहच्च रथंतरं च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥८,१०.१३॥

बृहत्साम और रथन्तरसाम दोनों स्तनरूप हुए तथा यज्ञायज्ञिय और वामदेव्यसाम भी दोनों स्तनरूप ही हुए ॥८,१०.१३॥

ओषधीरेव रथंतरेण देवा अदुह्रन् व्यचो बृहता ॥८,१०.१४॥

देव शक्तियों ने रथन्तरसाम से औषधियों का और बृहत्साम से व्यापक आकाश के रस का दोहन किया ॥८,१०.१४॥

अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियहन ॥८,१०.१५॥

वामदेव्य साम से जल और यज्ञायज्ञिय साम से यज्ञ विज्ञान को निकाला ॥८,१०.१५॥

ओषधीरेवास्मै रथंतरं दुहे व्यचो बृहत्॥८,१०.१६॥

जो इसके ज्ञाता हैं, रथन्तरसाम उनके लिए औषधियाँ देते हैं और बृहत्साम अन्तरिक्ष का दोहन करते हैं॥८,१०.१६॥

अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य वेद ॥८,१०.१७॥

जो इस के ज्ञाता हैं, उनके लिए वामदेव्यमाम जल और यज्ञायज्ञिय-विज्ञान को दुहते हैं ॥८,१०.१७॥

सोदक्रामत्सा वनस्पतीन् आगछत्तां वनस्पतयोऽघ्नत सा संवत्सरे समभवत्।
तस्माद्वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति वृश्चतेऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद ॥८,१०.१८॥

विराट् शक्ति पुन: उत्थान करके वनस्पतियों के समीप पहुँची, उसे वनस्पतियों ने भोगा। वह संवत्सर में उनके साथ एक रूप हुई। अत: वनस्पतियों के कटे हुए भाग भी एक संवत्सर में पुन: उग आते हैं। जो इसके ज्ञाता हैं, उनके दुष्ट (अप्रिय) शत्रु विनष्ट हो जाते हैं। ॥८,१०.१८॥

सोदक्रामत्सा पितॄन् आगच्छत्तां पितरोऽघ्नत सा मासि समभवत्।
तस्मात्पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥८,१०.१९॥

पुन: विराट् शक्ति पितरजनों के समीप पहुँची ।उसे पितरों ने भोगा ।उनसे वह मास में आत्मसात् हो गई । अतएव मनुष्य पितरों के निमित्त प्रत्येक माह मुख की समीपस्थ वस्तु (भोजन) दान-स्वरूप देते हैं, जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वह पितृयान मार्ग के ज्ञान को प्राप्त करते हैं ॥८,१०.१९॥

सोदक्रामत्सा देवान् आगच्छत्तां देवा अघ्नत सार्धमासे समभवत्।

तस्माद्देवेभ्योऽर्धमासे वषट्कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥८,१०.२०॥

विराट् शक्ति पुन: देवों के समीप पहुँची।देवों ने भोग किया। वह आधे मास तक उनके साथ एकरूप हो गई। इसलिए देव शक्तियों के निमित्त अर्धमास में वषट्कर्म करने का विधान है। जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वह देवयान मार्ग को जानने में सक्षम होते हैं ॥८,१०.२०॥

सोदक्रामत्सा मनुष्यान् आगच्छत्तां मनुष्या अघ्नत सा सद्यः समभवत्।
तस्मान् मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ॥८,१०.२१॥

विराट् शक्ति ने फिर उत्थान किया और वह मनुष्यों के समीप पहुँची। मनुष्यों ने उसका भोग किया। वह तत्काल उनके साथ संयुक्त हो गई। अतएव मनुष्यों के निमित्त हर दिन अन्नादि देते हैं, जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, देवगण उनके घर में प्रतिदिन (अन्न) लेकर आते हैं ॥८,१०.२१॥

सोदक्रामत्सासुरान् आगछत्तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ।
तस्या विरोचनः प्राह्लादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् ।
तां द्विमूर्धात्व्योऽधोक्तां मायामेवाधोक्॥
तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८,१०.२२॥

पुन: विराट् शक्ति के उत्क्रमण करने पर उसका असुरों के समीप पहुँचना हुआ, उसे असुर शक्तियों ने समीप बुलाया कि हे माया स्वरूपे ! आप यहाँ आएँ। प्रह्लाद के पुत्र विरोचन उनके वत्स थे और उनका लोहे का पात्र था। उसका तुपुत्र द्विमूर्धा ने दोहन किया और उससे माया का भी दोहन किया गया। उस माया से असुर शक्तियाँ जीवनयापन करती है, जो इसके ज्ञाता हैं, वह जीविकानिर्वाह करने वाले होते हैं ॥८,१०.२२॥

सोदक्रामत्सा पितॄन् आगछत्तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ।
तस्या यमो राजा वत्स आसीद्रजतपात्रं पात्रम् ।
तामन्तको मार्त्यवोऽधोक्तां स्वधामेवाधोक्।

तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८,१०.२३॥

उसके बाद विराट् शक्ति ने पुनः उत्क्रमण किया और पितरों के समीप पहुँची। पितरों ने हे स्वधे ! आगमन करें, ऐसा कहते हुए उसका आह्वान किया। उसके वत्स राजा यम हुए और चाँदी का उसका पात्र था। उसको मृत्यु के अधिष्ठाता देव अन्तक ने दोहन किया और उससे स्वधा का भी दोहन किया। स्वधा से पितरगण जीवनयापन करते हैं, जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वह जीविकानिर्वाह करने वाले होते हैं ॥८,१०.२३॥

सोदक्रामत्सा मनुष्यान् आगछत्तां मनुष्या उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ।
तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम् ।
तां पृथी वैन्योऽधोक्तां कृषिं च सस्यं चाधोक्।
ते स्वधां कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८,१०.२४॥

उस विराट् शक्ति ने पुनः उत्थान किया, तो मनुष्यों के समीप गयी। मनुष्यों ने "हे इरावती ! (हे अन्नवाली !) पधारें, ऐसा कहते हुए उसे समीप बुलाया। विवस्वान् के पुत्र मनु उसके वत्सरूप हुए और पृथ्वी पात्ररूप हुई। उसे राजावेन के पुत्र पृथु ने दुहा, उससे कृषि और धान्यं दोहन में प्राप्त हुए।उस कृषि और धान्य से ही मनुष्य जीवन यापन करते हैं । जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वह कृषि कार्यों में सिद्धहस्त होकर दूसरे प्राणियों की आजीविका के निर्वाहक होते हैं । ॥८,१०.२४॥

सोदक्रामत्सा सप्तऋषीन् आगछत्तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ।
तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् ।
तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक्तां ब्रह्म च तपश्चाधोक्।
तद्ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८,१०.२५॥

विराट् शक्ति ने पुनः उत्क्रमण किया और वह सप्तर्षियों के समीप पहुँची । हे ब्रह्मज्ञानवाली ! आप पदार्पण करें, उसे सप्तर्षियों ने इस प्रकार कहते हुए निकट बुलाया ।राजा

सोम उस समय उसके वत्सरूप हुए और छन्द पात्ररूप बने। उसका अंगिरस् कुल में उत्पन्न बृहस्पति ने दोहन किया, उससे ब्रह्म (ज्ञान) और तप: की प्राप्ति हुई। तप; और ज्ञान (वेद) से सप्तर्षि जीवनयापन करते हैं, जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वह ब्रह्मवर्चस सम्पन्न होकर दूसरे प्राणियों की आजीविका का भी निर्वाह करते हैं। ॥८,१०.२५॥

सोदक्रामत्सा देवान् आगछत्तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ।
तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ।
तां देवः सविताधोक्तामूर्जामेवाधोक्।
तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद
॥८,१०.२६॥

वह शक्ति पुन: देवताओं के समीप पहुंची । हे ऊर्जे !आप पधारे, ऐसा कहते हुए देवों ने उसे समीप बुलाया। तब इन्द्रदेव उनके वत्सरूप और चमस-पात्ररूप बने। सर्वप्रेरक सवितादेव उनके दोहनकर्ता बने और उससे बल की प्रप्ति हुई। उसी बल से देवगण अपना जीवनयापन करते हैं, जो इस के ज्ञाता हैं, वह आजीविका निर्वाह वाले बनते हैं। ॥८,१०.२६॥

सोदक्रामत्सा गन्धर्वाप्सरस आगछत्तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति ।
तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत्पुष्करपर्णं पात्रम् ।
तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक्तां पुण्यमेव गन्धमधोक्।
तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८,१०.२७॥

उस विराट् शक्ति द्वारा पुनः उत्थान किए जाने पर वह गन्धर्व तथा अप्सराओं के समीप पहुँची । गन्धर्व और अप्सराओं ने ऐसा कहते हुए उन्हें समीप आर्मान्त्रत किया कि "हे उत्तम सुगन्धवाली !(पुण्यगन्ध) आप पधारें"। सूर्यवर्चस के पुत्र चित्ररथ उसके वत्सरूप हुए और पुष्कर पर्ण (कमल पत्र) पात्र रूप बने। उसका सूर्यवर्चस के पुत्र वसुरुचि ने दोहन किया और उससे पवित्र सुगन्ध की प्राप्ति हुई। उस पवित्र सुगन्ध से अप्सरा और गन्धर्व जीवन निर्वाह करते हैं। जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वह पवित्र सुगन्धिमय होकर दूसरे प्राणियों के आजीविका के निर्वाहक होते हैं ॥८,१०.२७॥

सोदक्रामत्सेतरजनान् आगछत्तामितरजना उपाह्वयन्त तिरोध एहीति ।
तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् ।
तां रजतनाभिः कबेरकोऽधोक्तां तिरोधामेवाधोक्।
तां तिरोधामतिरजना पितर उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं पाप्मानमुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८,१०.२८॥

विराट् शक्ति पुनः उत्थान के साथ इतरजनों के समीप पहुँची । इतरजनों ने उन्हें समीप बुलाया कि "हे तिरोधे ! (अन्तर्धान शक्ति) आप यहाँ पदार्पण करें"। विश्रवा के पुत्र कुबेर वत्सरूप बने और पात्ररूप में आमपात्र प्रयुक्त हुआ। कुबेर के पुत्र रजतनाभि ने दोहन किया और उससे तिरोधा (अन्तर्धान) शक्ति की प्राप्ति की। अन्तर्धान शक्ति (तिरोधा) से अन्य मनुष्य जीवन निर्वाह चलाते हैं। जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वह अपने सभी पापों को दूर करते हैं और मनुष्य उससे जीविकोपार्जन (जीवन-निर्वाह) करते हैं। ॥८,१०.२८॥

सोदक्रामत्सा सर्पान् आगछत्तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति ।
तस्यास्तक्षको वैशलेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ।
तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक्तां विषमेवाधोक्।
तद्विषं सर्वा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८,१०.२९॥

वह विराट् शक्ति पुन: ऊपर की ओर जाकर सर्पो के समीप पहुँची । सर्षों द्वारा उनका अपने समीप आह्वान किया गया कि 'हे विषवती ! आप यहाँ पधारें। विशाला के पुत्र तक्षक उसके वत्सरूप थे और अलाबु उसके पात्ररूप बने। उसका ऐरावतवंशी धृतराष्ट्र ने दोहन किया और उससे विष की प्राप्ति हुई। उस विष द्वारा सर्प अपना जीवनयापन करते हैं। जो इस रहस्य के वास्तविक विशेषज्ञ हैं, उनसे सभी प्राणी आजीविका का निर्वाह करते हैं ॥८,१०.२९॥
तद्यस्मा एवं विदुषेऽलाबुनाभिषिञ्चेत्प्रत्याहन्यात्॥८,१०.३०॥

अतएव ऐसे विष विद्या को जानने वाले को यदि अलीबु से अभिषिञ्चित किया जाए, तो वह विष के दुष्प्रभाव को विनष्ट करता है ॥८,१०.३०॥

न च प्रत्याहन्यान् मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात्॥८,१०.३१॥

यदि (वह औषधि) विनष्ट न करे तो "तेरा हनन करता हूँ" ऐसी मन: संकल्पशक्ति से उसका प्रतिकार करे॥८,१०.३१॥

यत्प्रत्याहन्ति विषमेव तत्प्रत्याहन्ति ॥८,१०.३२॥

ऐसे प्रतिकारपरक प्रयोग किए जाते हैं, तो वह विष की प्रभावशीलता को ही विनष्ट करते हैं ॥८,१०.३२॥

विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुविषिच्यते य एवं वेद ॥८,१०.३३॥

जो इस विद्या के ज्ञाता हैं, विष उनके दुष्ट शत्रु पर जाकर गिरता है अर्थात् शत्रु ही उससे प्रभावित होते हैं ॥८,१०.३३॥

॥ इति अष्टम काण्डम्॥